प्रकाशकः—

देवराज सुराणा :: अभयराज नाहर
अध्यक्ष मन्त्री

श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय
मेवाड़ी बाजार ब्यावर (राजस्थान)

★

मुद्रक:
पं० बालकृष्ण उपाध्या
श्री नारायण प्रिन्टिग प्रेस
ब्यावर.

-: आभार :-

"हीरक प्रवचन" का दसवां भाग पाठकों के कर कमलों में उपस्थित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता है। कुछ ही समय पूर्व पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छटा, सातवां, आठवां व नवां भाग प्रकाश में आ चुका है। पाठकों ने उसे सहर्ष अपनाया है और इसी कारण आगे के भाग प्रकाशित करने का उत्साह हमें प्राप्त हो सका है। आशा है अगले भाग यथा सम्भव शीघ्र ही पाठकों की सेवा में पहुँच सकेंगे।

इन प्रवचनों के प्रकाशन में जिन-जिन महानुभावों का हमें प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है. हम उनके प्रति अतीव आभारी हैं। पं० र० मुनि श्री हीरालालजी म० का, जिनके यह प्रवचन हैं, कहां तक आभार माना जाय? आप तो इसके प्राण ही हैं। वे सज्जन भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके आर्थिक सहयोग से हम इस साहित्य को प्रकाशित कर सके हैं।

अन्त में निवेदन है कि धर्म प्रेमी पाठक इन्हें स्वयं पढ़ें, दूसरों को पढ़ने के लिए दें और अधिक से अधिक प्रचार करने में सहायक बनें। इति शम्

देवराज सुराणा — अध्यक्ष,

अभयराज नाहर — मन्त्री,

जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय; ब्यावर

:: दानदाताओं की शुभनामावली ::

—:o:—

श्री सद्जैनाचार्य शांतमूर्ति स्वर्गीय श्री खूबचन्दजी म० के गुरु भ्राता स्व० व्याख्यानी प० मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म० के सुशिष्य श्रमण संघीय जैनागम तत्त्व विशारद पं० रत्न मुनि श्री हीरालालजी का सं० २०१६ का चातुर्मास बैंगलोर केन्टोनमेन्ट में श्री वर्ध० स्था० जैन श्रावक संघ की आग्रह भरी विनती से मोरचरी तथा सपींगसरोड़ में हुआ। मुनि श्री के प्रवचन अत्यन्त मनोहर सारगर्भित एवं हृदयस्पर्शी होते थे। उन ओजस्वी प्रवचनों को सर्व साधारण के सदुपयोग में लाने के लिए श्रीमान् धर्मपालजी मेहता द्वारा संकेत लिपि में लिखवाए गए और उन व्याख्यानों का संपादन हो जाने पर "हीरक प्रवचनादि" पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवाने के लिए सांवत्सरिक महापर्व के समारोह की खुशी में निम्नलिखित उदार महानुभावों एवं महिलाओं ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए सहयोग प्रदान किया:—

:: मानद स्तम्भ ::

१११११) श्रीमान् सेठ मंगलजी भोजराजजी मेहता (पालनपुर निवासी) C/o विक्टरी टेडर्स रंगापिल्लाई स्ट्रीट पांडीचेरी

१००१) श्रीमान् सेठ कुन्दनमलजी पुखराजजी लूकड़, चिकपेट बैंगलोर २

:: माननीय सहायक ::

४०६) श्री महिला समाज की ओर से बैंगलोर

४०१) श्री सेठ जसराजजी भंवरलालजी सियाल चिकपेट " २

४००) " मंगलजी भाई मणीलाल भाई मेहता (पालनपुर निवासी) C/o ओवरसीज ट्रेडर्स २२ डूप्लेक्स स्ट्रीट पांडीचेरी

४००) श्री सेठ हरिलालजी लक्ष्मीचन्दजी भाई मोदी (पालनपुर निवासी) C/o एच०एल० मोदी वेशाल स्ट्रीट पांडोचेरी

४००) „ शांतिलालजी वछराजजी भाई मेहता (पालनपुरनिवासी) C/o एस० वछराज नं० ६ लंवोरहनी स्ट्रीट पांडोचेरी

३००) „ गुप्तदान (एक बहिन की तरफ से) मामूली पैठ बैंगलोर २

२५१) श्रीमती मंजुला बहिन C/o एम० एस० मेहता, मोरटन शौप महात्मा गांधी रोड; बैंगलोर १

२५१) श्रीमान् सेठ रूपचन्दजी शेषमलजी लूनिया; मोरचरी बाजार, बैंगलोर १

२५१) „ मासुलालजी बुधमलजी बजेडीया वोहरा, पारस टेक्सटाईल D.S. लेन चीकपेट बैंगलोर सीटी २

२५१) मेसर्स वरलोटा ब्रादर्स १०३७६ इन्टर नेशनल बीजनश कोरपोरेसन

२०२) „ सेठ मंगलचन्दजी मांडोत, शिवाजी नगर बैंगलोर १

२०१) श्रीमती ताराबाई कालीदासजी मेहता C/o सेठ रजनीकान्तजी कालीदासजी मेहता २११ लिंगीचेट्टी स्ट्रीट मद्रास १

२००) श्रीमान् सेठ जसवंतसिंहजी संग्रामसिंहजी मेहता (जयपुर निवासी) C/o इम्पोर्ट एक्सपोर्ट कोरपोरेशन पोस्ट बोक्स नं० २८ कोसेकड़े स्ट्रीट पांडोचेरी

१५१) „ गुप्त दान (एक सज्जन की ओर से) हलसूर

१५१) „ केसरीमलजी अमोलकचन्दजी आछा, कांजीवरम

१२१) „ घेवरचन्दजी जसराजजी गुलेछा, रंग स्वामी टेम्पल स्ट्रीट, बैंगलोर २

१२१) श्री सेठ जुगराजजी खींवराजजी बरमेचा मद्रास

१०२) „ जसराजजी रांका (राखी वाले) C/o सेठ रतनचंदजी
रांका ३८ वीरप्पन स्ट्रीट मद्रास

१०१) „ किशनलालजी फूलचन्दजी लूनिया,
दीवान सुरापालेन, बैंगलोर २

१०१) मिश्रीलालजी पारसमलजी कातरेला,
मामूली पैठ बैंगलोर २

१०१) „ मगनभाई गुजराती, गांधी नगर बैंगलोर २

१०१) „ गुलाबचन्दजी भवरलालजी संकलेचा,
मलेश्वरम बैंगलोर २

१०१) „ भभूतमलजी देवड़ा. बेनी मिल्स रोड़ बैंगलोर २

१०१) „ पन्नालालजी रतनचन्दजी कांकरिया,
सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) „ उदयरामजी भीकमचन्दजी खींवसरा,
सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) „ पुखराजजी मूथा, सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) „ गणेशमलजी लोढ़ा सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) „ नेमीचन्दजी चांदमलजी सियाल,
सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) „ भंवरलालजी घीसूलालजी समदड़िया,
सर्पीग्स रोड़ बैंगलोर १

१०१) „ हीराचन्दजी फतहराजजी कटारिया,
केवेलरी रोड़ बैंगलोर १

१०१) „ मिश्रीलालजी भंवरलालजी बोहरा,
मारवाड़ी बाजार बैंगलोर १

१०१) „ दुलराजजी भंवरलालजी बोहरा, अलसूर बैंगलोर ८

१०१) श्री सेठ अमोलकचन्दजी लोढ़ा तिमिया रोड़ बैंगलोर ८
१०१) ,, जवानमलजी भंवरलालजी लोढ़ा तिमिया रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, मिट्ठालालजी खुशालचन्दजी छाजेड़
तिमिया रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, मोतीलालजी छाजेड़ ,,
१०१) ,, भंवरलालजी बांठिया ,,
१०१) ,, जेवतराजजी मोतीलालजी लूनिया,
भारती नगर बैंगलोर १
१०१) ,, लक्ष्मीचन्दजी C/o मोतीलालजी माणकचन्दजी कोठारी
नं० ३२ D. अरुनाचलम मुदलियार स्ट्रीट बैंगलोर १
१०१) ,, पुखराजजी लूंकड़ की धर्मपत्नी श्रीमती गजरा बाई
चिक पैठ बैंगलोर २
१०१) ,, जी० नेमीचन्दजी सकलेचा
ओल्डपुर हाऊस रोड़ बैंगलोर २
१०१) ,, लखमीचन्दजी खारीवाल स्वस्तिक इलेक्ट्रिक
हनुमान बिल्डिंग चिक पैठ बैंगलोर २
१०१) श्री गुप्तदान (एक सज्जन की ओर से) शूले बाजार बैंग०
१०१) ,, रामलालजी मांडोत, शिवाजी नगर बैंगलोर १
१०१) ,, पुखराजजी मांडोत क्लौक पल्ली ,, १
१०१) ,, पुखराजजी पोरवाल,
चिक बाजार रोड़ शिवाजी नगर बैंगलोर १
१०१) ,, श्री सेठ अन्चूलालजी धर्मराजजी रांका,
एलगुण्ड पालियम बैंगलोर १
१०१) ,, चम्पालालजी रांका, ओल्डपुर हाऊस रोड़ बैंगलोर १
१०१) ,, केसरीमलजी मिश्रीमलजी गोठी,
५५ काशीमोर रायपुरम मद्रास १३

१०१) श्री सेठ जुगराजजी पुखराजजी खींवसरा,
सजोड़े अट्ठाई के उपलक्ष में
६/५८ बरकोट रोड़ टी. नगर मद्रास २७

१०१) " कपूरचन्दजी एन्ड सुरतिया,
६८ मिन्ट स्ट्रीट साऊकार पेट मद्रास १

१०१) उगमबाई की तपस्या के उपलक्ष में
C/o जी० रघुनाथमलजी ४१६ मेन बाजार वेल्लुर

१०१) श्री सेठ भभूतमलजी जीवराजजी मरलेचा,
नगरथ पैठ बैंगलोर २

१०१) " शान्तिलालजी छोटालालजी, एवेन्यु रोड़ "

१०१) " हिम्मतमलजी माणकचन्दजी छाजेड़
अलसूर बाजार बैंगलोर

१०१) " घीसूलालजी मोहनलालजी सेठिया, अशोका रोड़ मैसूर

१०१) " मेघराजजी गदिया, " "

१०१) " गुलाबचन्द कन्हैयालालजी गदिया, आरकोनम् मद्रास

१०१) श्रीमती सरस्वती बहिन C/o मणिलाल चतुरभाई
नवरंगपुरा एलीस ब्रिज बस स्टेन्ड के सामने, अहमदाबाद

१०१) श्री सेठ मिश्रीलालजी लूंकड़ त्रिवल्लूर मद्रास

१०१) " मानमलजी भंवरलालजी छाजेड़ "
पलुमर रोड़ उरगम के. जी. एफ

१०१) " हीरालालजी पुखराजजी कटारिया आरकोनम

१०१) श्रीमती अ. सौ. कचनगोरी धर्मपत्नी श्री नवलचन्दजी डोसी
C/o बोम्बे आपटीकलब १७ सी ब्रोडवे मद्रास १

१०१) श्री सेठ हेमराजजी लालचन्दजी सींघवी
नम्बर ११ बड़ा बाजार रायपेट मद्रास १४

१०१) श्री सेठ अमोलकचन्द भंवरलाल विनायकीया,
१D२/१३६ माऊन्ट रोड़ थाऊजेन्ट लाईट मद्रास ६

१०१) „ वरजीवन पी. सेठ, ठी. सुलतान बाजार
इन्द्र बाग हैदराबाद (आंध्र प्रदेश)

१०१) „ खिवराजजी चोरड़िया, नम्बर ३६ जनरल मुथैय्या स्ट्रीट
साहूकार पेठ मद्रास नम्बर १

१०१) श्रीमान् सेठ जंवतमलजी मोहनलालजी चोरड़िया नम्बर ७
बाजार रोड़ मैलापुर मद्रास

१०१) „ भाणजी भगवानदासजी ६४ मिन्ट स्ट्रीट जी पी. ओ.
बोक्स नम्बर २८२ साहूकार पेट मद्रास १

१०१) „ शम्भुमलजी मदनलालजी वैद्य नम्बर ८ बाजार रोड़
मैलापुर मद्रास ४

१०१) „ शम्भुमलजी माणकचन्दजी चोरड़िया नम्बर १५ बाजार
रोड़ मैलापुर मद्रास ४

१०१) „ भीकमचन्दजी सुराणा नम्बर ३३ पी०पी० वी० कोयल
स्ट्रीट मैलापुर मद्रास ४

१०१) „ एच० सूरजमलजी जैन नम्बर ६७/१८ उसमान रोड़
टी नगर मद्रास १७

१०१) „ गुलाबचन्दजी घीसूलालजी मरलेचा बाजार रोड़
पल्लावरम

१०१) „ सोजत रोड़ निवासी गणेशमलजी राजमलजी मरलेचा
रेडहिल्स मद्रास

१०१) श्रीमती चम्पाबाई और सायर बाई की ओर से C/o श्रीमान्
सेठ जुगराजजी पारसमलजी लोढ़ा २६ बाजार रोड़
सेदा पेठ मद्रास १५

१०१) „ मनीलालजी एन्ड सन्स १७२ नेताजी बोस रोड़ मद्रास १

१०१) श्री सेठ एस० रतनचन्दजी चोरड़िया ५ रामाजियम आयर स्ट्रीट इलीफैन्ट गेट मद्रास १

१०१) „ एम० जेवतराजजी खिवसरा नागलापुरम (तालुका) सतीवेड जिला (चितुर)

१०१) „ सी० चान्दमलजी टिन्डीवरम

१०१) „ गुलाबचन्दजी घीसूलालजी मरलेचा ४६ बाजार रोड़ पल्लावरम

१०१) „ दीपचन्दजी पारसमलजी मरलेचा चंगलपेठ

१०१) „ बख्तावरमलजी मिश्रीमलजी मरलेचा तिरकुलिकुण्डम

१०१) „ गनेशमलजी जवन्तराजजी मरलेचा तिरकुलिकुण्डम

१०१) „ सुजानमलजी बोहरा की धर्मपत्नी शान्तिकवर के सजोड़े त्याग के उपलक्ष में C/o सेठ सुजानमलजी बोहरा गांव सियाला (जिला) तन्जीवर

१०१) „ जशराजजी सिंघवी की धर्मपत्नी सायर बाई ने सजोड़े ब्रह्मचर्य व्रत धारन करने के उपलक्ष में C/o सेठ जशराजजी देवराजजी सिंघवी गांव बलवानूर

१०१) „ विजयराजजी नेमीचन्दजी बोहरा „ „

१०१) „ प्रेमराजजी महावीरचन्दजी भडारी „ „

१०१) „ आईदानजी गोलेछा की धर्मपत्नी गोराबाई ने सजोड़े ब्रह्मचर्यव्रत धारन करने के उपलक्ष में C/o सेठ आईदानजी अमरचन्दजी गोलेछा जवेलर्स विल्लू पुरम

१०१) „ चुन्नीलालजी नाहर के सजोड़े शीलव्रत धारन करने के उपलक्ष में C/o चुन्नीलालजी धरमचन्दजी नाहार गांव अरगडनल्लूर स्टेशन) तिरकोम्ल्लूर

१०१) श्री सेठ एच० चन्दनमलजी एन्ड को० नम्बर ६७ नयनापा-नायक स्ट्रीट मद्रास ३

१०१) श्री एस वनेचन्दजी बीजराजजी भटेवड़ा नम्बर ४२५ मेन
बाजार वैलुर

१०१) „ एन० घेवरचन्दजी सोवनराजजी भटवेड़ा नम्बर ४११
मेन बाजार वैलुर

१०१) „ नेमीचन्दजी ज्ञानचन्दजी गुलेछा नं० ७५ „ „

१००) „ डायालाल मणीलाल शाह (पालनपुर निवासी) C/o
जेम्स एन्ड कम्पनी रंगापिल्लाई स्ट्रीट पाडेचेरी

१०१) „ कान्तिलालजी भाई भंसाली (पालनपुर निवासी)
C/o चेरी ट्रेडर्स दी त्यागमुदली स्ट्रीट पाडीचेरी

१०१) „ नन्दलालजी कोठारी C/o सेठ चीरंजीलालजी महावीर-
प्रसादजी जैन भरतपुर (राजस्थान)

१०१) श्री S, सनतोकचन्दजी जवरीलालजी नं० ४२ बाजार
स्ट्रीट मधुरनटकम जी: (चंगलपेठ)

१०१) „ श्रीरेमलजी भंवरलालजी मुथा नं० ४५ रंगस्वामी
टैम्पलसट्रीट वेंगलोर सीटी नं० २

१०१) श्रीमती दाखीबाई C/o सीरेमलजी चम्पालालजी मुथा
न० ४५ रंगस्वामी टेमपल स्ट्रीट वेंगलोर सीटी नं० २

१०१) श्रीमती प्यारीबाई के १७ दिन के तप के उपलक्ष में भेंट
C/o घेवरचन्दजी चम्पालालजी एण्ड को नं० १४६
मामुलीपेठ वेंगलोर सीटी

१०१) श्री मुलतानमलजी हसतीमलजी नं० १७ मामुलीपेठ
वेंगलोर सीटी

१०६) श्रीमती कमलाबाई C/o फतेचन्दजी धनराजजी मुथा
बड़ा बाजार Po. बोलारम (अंग प्रदेश)

१०१) श्री हीराचन्दजी नेमीचन्दजी बांटीया
Po. आरकाट (जिला N.A.)

अर्थात्:—सज्जनों का ज्ञान, धन और आध्यात्मिक एवं शारीरिक शक्ति आदि क्रमशः दूसरों के हितार्थ एवं संरक्षणार्थ हुआ करती है।

हां तो, हमारे श्रद्धेय मन्त्री मुनि श्री हीरालालजी म० ने भी अपनी ओजस्वी-यशस्वी वाणी द्वारा इस मानव-समाज पर सराहनीय उपकार किया है।:—

"हीरक प्रवचन" का यह दसवां भाग पाठकों के पवित्र कर-कमलों में पहुंच रहा है। इसके पूर्व इस व्याख्यान माला के नो भाग प्रकाशित हो चुके हैं।

इन सर्व भागों में मन्त्री मुनि श्री जी के बेंगलोर चातुर्मास में दिये गये सुन्दर, सुबोध, सरल एवं शिक्षाप्रद व्याख्यानों का संग्रह है।

इन व्याख्यानों में जिज्ञासु-एव मुमुक्षुओं को आपके लम्बे विहार-परिभ्रमण के अनुठे-अनुभव के साथ-साथ शास्त्रीय एवं नैतिक ज्ञान का भी गहन-गम्भीर अनुभव मिलता है। वक्ताओं को भी हेतु, दृष्टान्त और युक्तियों आदि की प्रयाप्त सामग्री उपलब्ध होती है।

प्रस्तुत पुस्तक में नौ व्याख्यान है। इसमें अनुभव सहित "समवायंग सूत्र" एवं "श्रीपाल मैनासुन्दरी" द्वारा आधारित नव-पद ओली तप को भी गर्भित किया गया है।

अतः इस भाग के पठन-पाठन से ऐहिक सुख संपत्ति युक्त स्वर्ग-अपवर्ग का उत्तम मार्ग भी सुलभतर हो सकता है।

आशा है सुज्ञ पाठक वृन्द इससे पूर्ण लाभ प्राप्त करेंगे।

विनितः—

अजमेर
१०-१२-६२

श्री प्रतापमलजी म० के सुशिष्य
मुनि रमेश ('शास्त्री, रत्न')

विषयानुक्रमणिका
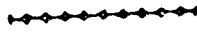
❀ ओम् अर्हम् नमः ❀

ओली तप

[२]
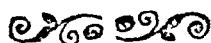
भाइयो !

श्री समवायांगसूत्र के बाईसवें समवाय में आने वाले बाईस परीषहों का वर्णन चल रहा है। कल क्षुधा और पिपासा परीषह के विषय में कहा गया था। उनके पश्चात् तीसरा और चौथा परीषह है—शीत और उष्ण के कष्ट को सहन करना। आज इन्हीं के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना है।

भाइयो ! साधु दो प्रकार के होते हैं—जिनकल्पी और स्थविरकल्पी। जिनकल्पी साधु वस्त्रों को धारण नहीं करते। स्थविरकल्पी परिमित वस्त्र रखते हैं। तीर्थङ्कर भगवन्तों ने स्थविर-कल्पी साधुओं के लिए तीन चादरों का विधान किया है।

आप जानते हैं कि कभी-कभी इतनी सर्दी पड़ती है कि लोग कहते हैं—आज तो लक्कड़दाह पड़ रहा है और मटकों का पानी तक जम गया है। ऐसी स्थिति में गृहस्थ सर्दी से बचने के

लिए अग्नि जलाकर तापते हैं, निर्वात कमरे में जाकर गर्म कपड़े ओढ़ कर सोते हैं। कोई-कोई हिटर के द्वारा कमरे को गर्म कर रखते हैं। कई रईसों के मकान 'एयरकंडीसन्स' (वातानुकूलित) होते हैं जो सर्दी में गर्म और गर्मी में सर्द रहते हैं। तो सर्दी से बचने के लिए गृहस्थ ऐसे-ऐसे उपाय काम में लाते हैं। मगर साधु का आचार निराला है। कितनी ही कठिन सर्दी क्यों न पड़ रही हो, साधु नंगे सिर और नंगे पैर ही चलता है और अपनी सब क्रियाएँ करता है।

श्री उत्तराध्ययनसूत्र में बतलाया गया है कि ऐसे समय में सर्दी से घबरा कर साधु मन से भी अग्नि का सेवन करने की इच्छा न करे।

एक समय की बात है, जब श्रमण भगवान् महावीर इस भारतभूमि पर विचरण कर रहे थे और उनके आज्ञानुवर्त्ती चार मुनि राजगृह की ओर पधार रहे थे। वह चारों मुनि उत्कृष्ट करणी करने वाले थे। चलते-चलते संध्या हो गई और जहां सूर्यास्त हुआ, वहीं वे वृक्ष के नीचे ठहर गए। चारों ने वहीं ध्यानयोग आरम्भ कर दिया। राजगृह के आस-पास पांच पहाड़ हैं, जिनके पृथक्-पृथक् नाम हैं। उनमें से एक का नाम वैभार-गिरि है।

साधु यद्यपि चार थे, मगर वे कुछ आगे-पीछे चल रहे थे।

किसी की चाल तेज और किसी की धीमी थी। अतएव जो साधु जहां था, सूर्यास्त होने पर वह वहीं वृक्ष के नीचे ठहर गया। उस रात्रि में बड़ी ही भयानक सर्दी पड़ी। जो साधु वैभारगिरि पर ठहरे थे, उन्होंने प्रथम प्रहर में ही सर्दी के कारण देह त्याग दिया। दूसरे मुनि पहाड़ के नीचे थे, उनका दूसरे प्रहर में स्वर्गवास हो गया। तीसरे मुनि नगर और पहाड़ के बीच में थे। उनका तीसरे प्रहर में देहान्त हो गया। चौथे साधु नगर के कुछ निकट जा पहुँचे थे, उनका चौथे प्रहर में स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार उन तपोधन मुनियों ने शरीर का त्याग करना सहन किया, परन्तु अग्नि का सेवन नहीं किया।

यह है साधु की चर्या! साधु ने पूर्ण अहिंसा का पालन करने के लिए अग्निकाय के आरम्भ का त्याग किया है। अतएव चाहे जैसी परिस्थिति क्यों न हो, वह अपने त्याग पर अटल रह कर ही साधना करता है। अपने ध्येय में सफलता प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की दृढ़ता अनिवार्य है। दृढ़तापूर्वक संकल्प पर अटल रहे बिना लौकिक सिद्धि भी नहीं प्राप्त होती तो लोकोत्तर सिद्धि तो प्राप्त हो ही कैसे सकती है।

आशय यह है कि कितनी ही सर्दी क्यों न पड़ रही हो, सच्चे साधक का यही कर्त्तव्य होता है कि वह अपना लक्ष्य आत्मा की ओर ही रक्खे और वह समझे कि मेरी आत्मा

अमूर्त्तिक है—सर्दी-गर्मी की पहुँच से परे है। शरीर मेरा नहीं है—मैं शरीर नहीं हूँ। साधक यह भी विचार करता है कि—हे आत्मन्! यह सर्दी तो नगण्य है। तू ने इससे अनन्तगुणी सर्दी, अनन्तवार नरक में जाकर सहन की है। सर्दी से भी तेरा कुछ नहीं बिगड़ा तो यह साधारण सर्दी क्या बिगाड़ सकती है। इस प्रकार विचार कर साधु को समभाव से शीत परीषह सहन करना चाहिए।

चौथा उष्णपरीषह है। जब दिवाकर की प्रखरतर रश्मियां पृथ्वी पर अग्निवर्षा करती हैं, पृथ्वी तवे की तरह तप जाती है और वायु में भी उष्णता व्याप्त हो जाती है, उस समय सहज ही लोगों की स्नान करने की इच्छा जागृत हो उठती है। बहुत-से लोग अनेक उपायों से शीतल समीर का सेवन करते हैं। मगर साधुओं को ऐसे समय में भी नंगे पैर, नंगे सिर, कड़कड़ाती धूप में पैदल चलना पड़ता है। शरीर पसीने से लथपथ हो जाता है और चित्त में व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है। परन्तु कितनी भी गर्मी क्यों न पड़ रही हो; साधु पंखे से, वस्त्र से या पत्ता आदि से हवा भी नहीं करते। उन्हें गर्मी का परीषह शान्तिपूर्वक सहन करना चाहिए।

चित्त में जब अशान्ति उत्पन्न होने लगे तो साधु को ऐसे लोगों का विचार करना चाहिए जो उस कष्ट को सहन करते हैं।

ऐसा विचार करने से सहनशक्ति बढ़ती है। यथा सैकड़ों लोग रेलवे के कारखानों में काम करते हैं। कई लोग भयंकर गर्मी के समय में भी ऐंजिन में कोयला झोंकने का काम करते हैं। वे भी आखिर मनुष्य ही तो हैं। वे गर्मी के कष्ट को सहन करते हैं तो मुझे भी क्यों नहीं सहन करना चाहिए ?

मनुष्य अपने दुःख की अनुभूति को अगर कम करना चाहे तो अपने से अधिक दुखियों की ओर दृष्टि डाले। अगर किसी का शरीर सुकुमार होता है और हृदय निर्बल होता है तो उसे छोटा-सा दुःख भी बड़ा प्रतीत होने लगता है। उत्तराध्ययनसूत्र में एक दृष्टान्त दिया गया है—

वसन्तपुर नामक नगर में एक सेठ रहता था। जब उसका लड़का कुछ बड़ा हुआ तो माता-पिता ने दीक्षा अंगीकार करने का विचार किया। मगर प्रश्न उपस्थित हुआ कि लड़के को किसके भरोसे छोड़ा जाए ? तब सेठानी ने लड़के को पिता के भरोसे छोड़ कर दीक्षा ले ली। वह करनी में लग गई। बाद में सेठ भी अपने बालक के साथ दीक्षित हो गया जब तक वह जीवित रहा, अपने बालक साधु की सेवा करता रहा। मगर एक दिन ऐसा आया कि कराल काल ने आक्रमण किया और पिता का देहान्त हो गया। वह बालक अब जिस साधु के पास रह रहा था वह साधु उतना सेवाभावी नहीं था। अतएव एक दिन

उसने उस साधु से जो अब नवयुवक हो गया था, कहा—कभी तो तुम्हें भी भिक्षा के लिए निकलना चाहिए।

वह मुनि, जिसका नाम अरणक था, साधु के कथनानुसार भिक्षा के लिए निकला। वहां भिक्षा का समय देरी से होता था, क्योंकि सब जगह भोजन का समय सरीखा नहीं होता। मेवाड़ में प्रातः आठ बजे भोजन तैयार हो जाता है। वहां नाश्ते का खडंगा नहीं है तो जल्दी खाने को मिल जाता है।

अरणक मुनि ऐसे ही किसी स्थान पर थे जहां विलम्ब से भोजन मिलता था और गर्मी के दिन थे। ऐसे स्थान और समय में जब वह भिक्षा लेकर लौट रहे थे। तो गर्मी के कारण उनका मुख कुम्हला गया। उनके शरीर की क्या स्थिति हुई, कवि के शब्दों में सुनिए—

मुख कुमलाणो रे मालती फूल ज्यों,
ऊभा गोखारे हेठो जी।
खरी दुपहरी रे दीठो एकलो,
मोह्यो माननी मीठो जी।
अरणक मुनिवर चाल्या गोचरी,
तड़के दाजे शीशो जी।
पाय उभराणो रे वेलु पर जले,
तन सुकुमाल मुनीशो जी।

अरणक मुनि जब गोचरी लेकर लौट रहे थे तब गर्मी, भूख और प्यास के मारे उनका मुख कुम्हला गया और शरीर से पसीना निकलने लगा। चलना कठिन हो गया तो वे एक सेठ के मकान के झरोखे के नीचे छाया में विश्राम लेने को खड़े हो गए। मकान का मालिक सेठ कहीं परदेश गया हुआ था उस मकान में अकेली स्त्री ही रह रही थी। अकस्मात वह झरोखे में आई और मुनि को देख कर उसके चित्त में विकार उत्पन्न हो गया। तब—

वयण रंगीली रे नयणे वींधियो,
ऋषि थम्यो तिण ठामो जी।
दासी ने कहे जाय उतावली,
ऋषि तेड़ी घर लाओ जी।
पावन कीजे हो मुझ घर आंगणो,
वहरो मोदक सारो जी।
नवयौवन में रे काया कांई दहो,
सफल करो अवतारो जी।

उस स्त्री ने अपने 'नैण' और 'वैण' से मुनिराज का हृदय वींध दिया। उसी समय सेठानी ने अपनी दासी को आदेश दिया—'जल्दी जा और इन मुनि को बुला ला। मैं इन्हें भिक्षा दूंगी' दासी मुनि के निकट गई और बोली—महाराज, सेठानीजी आपको आहार देने के लिए बुला रही हैं।

मुनि जब घर में पहुंचे तो सेठानी ने प्रेम से स्वागत किया। फिर उन्हें भोजनशाला में ले गई। वहां ले जाकर वह आहार बहराती जाती और कहती जाती–महाराज! आप क्यों कष्ट सहन कर रहे हैं? इस नवयुवावस्था में देहदमन करने से क्या लाभ है? आराम से यहीं रहिए और इस जीवन का आनन्द उठाइए।

मुनि का दिल बदल गया। विकारवासना जागृत हो गई। तब क्या हुआ? कवि ने कहा है—

चन्द्रावदनी से चारितर चुकीयो,
सुख विलसे दिन रातो जी,
एक दिन गोखेरे रमता सोगटा,
तब दीठी निज मातो जी।
अरणक अरणक करती मां फिरे,
गलियां गलियां मुझारो जी।
कह्यो किण दीठो रे म्हारो अरणको,
साथे लोक अपारो जी॥

निमित्त मिलते ही अरणक मुनि संयम से भ्रष्ट हो गए और गृहस्थी के वेष में सेठानी के साथ रहने लगे, इस प्रकार रहते-रहते काफी समय व्यतीत हो गया।

एक दिन अरणक सेठानी के साथ झरोखे में बैठे हुए

चौपड़ खेल रहे थे और प्रेमालाप कर रहे थे। तब सेठानी ने उनसे पूछा-आपकी पत्नी कहां है?

अरणक ने उत्तर दिया-मेरी स्त्री होती तो उसका बनकर ही क्यों न रहता?

इसी सिलसिले में उत्तराध्ययनसूत्र में एक उदाहरण आया है, जो इस प्रकार है—गर्दभाली मुनि जंगल में एक वृक्ष के नीचे ध्यान में अवस्थित थे। उसी समय वहां का राजा आखेट करने उसी जंगल में जा पहुँचा। राजा को एक मृग दिखाई दिया और उसने पीछा करके आखिर उसे बाण से बींध दिया। बाण-विद्ध मृग भागता हुआ वहीं पहुंचा जहां मुनि ध्यान में लीन थे। वह वहां पहुँच कर गिर गया। राजा उसका पीछा करता हुआ जब वहां पहुँचा तो मुनि को देख कर घबरा गया। उसने सोचा—मैंने गजब कर डाला। यह मृग तो इन्हीं मुनिराज का जान पड़ता है। मुनिराज कहीं क्रुद्ध होकर मुझे शाप न दे दें।

इस प्रकार विचार कर राजा घोड़े से नीचे उतर कर और दोनों हाथ जोड़ कर मुनि के सामने बैठ गया। मुनिराज ध्यान में लीन थे, अतएव मौन रहे और उनके मौन ने राजा को भयभीत कर दिया। उसने कहा—महाराज! मैं संयत राजा हूं। आप मुझ पर क्रुद्ध हैं? तब ध्यान समाप्त होने पर मुनिराज बोले—राजन्! भय मत खाओ। मैं तुम्हें अभयदान देता हूं। जैसे मैं तुम्हें अभय देता हूं उसी प्रकार तुम भी इन मूक एवं निरपराध वन्य

पशुओं को अभय प्रदान करो। यह मानवजीवन पुनः पुनः नहीं प्राप्त होता। प्राप्त होने पर भी वह अल्पकालीन है, अनित्य है। ऐसे जीवन के लिए हिंसा करने से क्या लाभ है? यह राज्य और परिवार, स्त्री, पुत्र मरने के पश्चात् सब छूट जाता है—पराया हो जाता है। इसके लिए क्यों पापों की गठरी बांधते हो? क्यों अनमोल मानवजीवन को खाक में मिलाते हो?

इस प्रकार का प्रभावशाली प्रवचन सुन कर राजा का अन्तःकरण वैराग्य से परिपूर्ण हो गया। वह उसी समय वहीं उनका शिष्य बन गया।

हां, तो मूल बात पर आइए। अरणक और सेठानी झरोखे में बैठ कर चौपड़ खेल रहे थे। किसी को पता नहीं था कि अरणक के जीवन में इतना निम्न स्तर का परिवर्त्तन आ गया है।

अरणक जब बहुत समय बीत जाने पर भी गोचरी लेकर न लौटा तो साथी साधुओं ने उसकी तलाश की। मगर उन्हें पता न लगा। अन्त में उन्होंने अरणक की माता-साध्वी-के पास यह समाचार पहुंचा दिया।

माता का हृदय नवनीत के समान होता है। वियोग के ताप को वह सहन नहीं कर सकता। तत्काल पिघलने लगता है। अरणक की माता यद्यपि साध्वी थी, फिर भी उसके अन्तर के किसी प्रदेश में पुत्र-ममता छिपी हुई थी। अतएव जब अरणक

के अचानक गायब होने का समाचार उसे मिला तो वह विह्वल हो उठी। वह अपने पुत्र की खोज करने के लिए निकल पड़ी। वह पागल-सी हो कर गली-गली और कूचे कूचे में 'बेटा अरणक, बेटा अरणक' की रट लगाती हुई भटकने लगी। यह दशा देख कर लोग उसे 'पागल महाराज' नाम से सम्बोधित करने लगे। लड़के उसे चिढ़ाने लगे। जब वह किसी गली में जा निकलती लड़के कहते-लो, यह रहा तेरा अरणक। वह उस ओर लपकती और लड़के तालियां पीटते हुए भाग खड़े होते।

अरणक उसे कैसे मिलता? वह तो अपने गुरुओं और माता को भुलाकर विलास के कीचड़ में फँस गया था।

भाइयो! स्थानांगसूत्र में बतलाया गया है कि अनेक कारणों से साधु साधुत्व का परित्याग करके चला जाता है। यथा-

(१) क्षिप्तचित्त अर्थात् किसी के वियोग आदि कारण से चित्त विक्षिप्त हो जाने पर साधुता त्याग देता है। (२) दृप्त चित्त-दर्पित चित्त वाला होकर संयम से च्युत हो जाता है। (३) यक्षाविष्ट-शरीर में देवता प्रविष्ट हो जाय तो पागल हो जाता है और संयम से भ्रष्ट हो जाता है। (४) उपसर्गप्राप्त-दैवी, मानवी या तिर्यग्योनिक उपसर्ग आने से भी भय के कारण साधु पागल हो जाता है और संयम से च्युत हो जाता है। (५) उन्मादप्राप्त-उन्मत्तता के कारण (६) लड़ाई-झगड़ा हो जाने के कारण (७)

भारी प्रायश्चित्त आ जाने के कारण (८) आहार-पानी का त्याग कर देने के कारण आदि।

आशय यह है कि अरणक की माता भी अपने पुत्र के अकस्मात् गायब होने से पागल हो गई। आश्चर्य की बात तो यह है कि एक ही नगर में होते हुए भी किसी को किसी का पता नहीं लगा।

एक दिन जब अरणक और सेठानी झरोखे में बैठे चौपड़ खेल रहे थे, अरणक की माता 'अरणक अरणक' की पुकार करती उधर से निकली तो अरणक अपने नाम की पुकार सुन कर चकित हो गया। उसने गली की ओर दृष्टि डाली तो पता चला कि उसकी माता उसके लिए पागल बनी घूम रही है। माता की यह दुर्दशा देख कर वह चौपड़ खेलना तो भूल गया और अपनी पूर्वस्थिति पर विचार करके पश्चात्ताप करने लगा। मन ही मन सोचने लगा–अरे अरणक! तू कहां से कहां आ पहुँचा। जिन भोगों को भुजंगम के समान समझ कर त्याग चुका था, पुनः उन्हीं की लपेट में आ गया। हाय! तू ने कोयलों के लिए चिन्तामणि त्याग दिया। तू मानवजीवन के सर्वोत्तम लाभ से वंचित हो गया और अपनी माता साध्वी की दुर्दशा का भी निमित्त बन गया। जरा-सी गर्मी सहन न करने के कारण तेरा यह अधःपतन हो गया। इस प्रकार विचार करने पर अरणक ने क्या किया? कवि के शब्दों में ही सुनिए—

महलांथी ऊतरी रे जननी पाय नम्यो,

वहुला जो मन मोह्यो जी।

धिग वच्छ तुझने रे चरितर चूकियो,

जे थी शीवपुर जायो जी ॥

अरणक तत्काल महल से नीचे उतरा और माता के चरणों में गिर पड़ा। फिर आंखों में आंसू लाकर कहने लगा—माता ! तू जिसे पुकार-पुकार कर बेहाल हो गई है, वही तेरा कपूत अरणक तेरे चरणों में आकर पड़ा है। माता का चित्त अरणक को पहचानते ही ठिकाने आ गया। मगर जब उसने देखा कि अरणक साधुवेष त्याग कर गृहस्थ बन गया है तो बोली-अरे बेटा ! तूने यह क्या कर डाला ? धिक्कार है तुझको ! स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग त्याग कर तूने नरक की एक राह पकड़ ली। संयमधन को लुटा दिया। तेरी यह स्थिति देख कर लज्जा के कारण मेरा सिर नीचा हो रहा है। हमने तुझे अमृत पिलाया था। तूने उसे ढोल कर जहर का प्याला पी लिया।

माता की कड़ी फटकार सुन कर अरणक की आंखों से आंसुओं की अविरल धारा प्रवाहित होने लगी। उसने गद् गद् स्वर से कहा—माताजी ! भवितव्य प्रबल है। कर्मोदय से प्राणी शुद्ध या क्षुद्र हो जाता है। गर्मी सहन न कर सकने की कायरता ने मेरा सर्वनाश कर डाला ! मैं मोह के वश होकर संयम से च्युत हो गया, इसका मेरे हृदय में घोर पश्चात्ताप है।

पश्चात्ताप वह अग्नि है जिसमें पुराकृत पाप भस्म हो जाते हैं और जो हृदय को विशुद्ध बना देता है। माता का कथन सुनकर अपनी स्थिति पर विचार करके अरणक पुनः प्रबुद्ध हो गया। उसके वैराग्य के संस्कार फिर जागृत हो गए। फिर से दीक्षा अंगीकार करके वह संयम में लीन हो गया और उत्कृष्ट आराधना करने लगा।

अगनधकंती रे शिल्ला ऊपरे, अरणक अनशन कीधो रे।
'समयसुन्दर' कहे धन ते मुनिवर, मनवंछित फल लीधो रे॥

अरणक मुनि ने सोचा—जिस दुःख ने मुझे पराजित किया अब मैं उसी दुःख का अन्त करूंगा। जिन विकारों ने मुझे गिराया, उनका समूल उच्छेदन करके ही रहूँगा।

भाइयों! मानव हृदय एक विचित्र पहेली है। कभी-कभी उसमें दुर्बल भावना जागृत हो जाती है और कभी सबल भावना का संचार भी हो जाता है। अरणक मुनि अब उच्च कोटि की आराधना में तत्पर हो गए। जब अन्तिम समय आया देखा तो धधकती शिला पर आरूढ़ होकर अनशन कर लिया और तीव्र परीषह सहन करते हुए समभाव रक्खा। समभाव रखने से उन्हें केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हुई। फिर समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया।

भाइयो! बाईस परीषहों में चौथा उष्णता का परीषह है,

जिसे साधुओं और साध्वियों को अवश्य सहन करना चाहिए। चाहे जैसी दहला देने वाली गर्मी क्यों न पड़ रही हो, साधु को न तो सचित्त पानी का सेवन करना चाहिए, न पंखा करना चाहिए और न स्नान करने का विचार करना चाहिए। इस प्रकार समभाव से परीषह सहन करने से चित्त में क्षोभ नहीं होता; समाधि भाव स्थिर रहता है; संयम की वृद्धि होती है, कर्मों की निर्जरा होती है और आत्मा का सामर्थ्य बढ़ता है।

श्रीपाल चरित—

भाइयो! आज नवपद-ओली का दूसरा दिन है। इस तपस्या की कैसी महिमा है, यह समझाने के लिए श्रीपाल का चरित कल सुनाया था। उसी का अगला भाग फिर आपके समक्ष रख रहा हूं।

कई भाई और बहिन इस पावन तपोयज्ञ में भाग ले रहे हैं यह प्रसन्नता का विषय है। जो भी भव्य जीव इस तप की आराधना करेंगे वे यहां सुख प्राप्त करते हुए आगे भी सुखी होंगे।

कल बतलाया गया था कि श्रीपाल और मैनासुन्दरी जब मुनिराज के निकट गए और उन्होंने रोगमुक्ति का उपाय पूछा तो मुनिराज ने नवपद ओली तप का विधान बतलाया और कहा—विधिपूर्वक नवपद की आराधना करने से इह लोक में

और परलोक में सुख-शान्ति प्राप्त होती है। जो ऐहिक भावना से आयंबिल और जाप करते हैं, उनके कुष्ठ एवं क्षय आदि भयानक रोग भी नष्ट हो जाते हैं, ताप, तिजारी, डाकिनी, शाकीनी; भूत, प्रेत आदि सभी भाग जाते हैं। निर्धन को धन की और निर्जन को जन की प्राप्ति होती है, तात्पर्य यह है कि श्रद्धापूर्वक लौकिक भावना से यह तप करने पर सभी प्रकार के अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। जिसके साथ अप्रीति हो गई हो; वह भी प्रीति करने लगता है। राजा की ओर से मान-सन्मान की प्राप्ति होती है।

जो परलोक की भावना से इस तप की आराधना करता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष का लाभ होता है।

इस प्रकार मुनि महाराज ने उन्हें नवपद-तपस्या की महिमा के विषय में उपदेश दिया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—देखो, हम तो केवल भगवान् का ही नाम जानते हैं और यह भी जानते हैं कि यही सब बाह्य आभ्यन्तर रोगों की सब से बड़ी औषध है। भगवान् के नाम के जाप से जब आत्मा के अनादिकालीन रोग भी नष्ट हो जाते हैं तो शरीर के नीरोग होने में क्या देर लग सकती है ?

मुनिराज के कथन को मैनासुन्दरी ने पूर्ण श्रद्धा के साथ श्रवण किया और हृदयंगम किया। तदनन्तर वे मुनि को वन्दन नमस्कार करके जाने ही वाले थे कि उसी समय एक अन्य श्रावक

वहां आ पहुँचा। उसने श्रीपाल और मैनासुन्दरी को देख कर पूछा—महाराज ! ये लोग कौन हैं ?

मुनिराज ने कहा—ये तुम्हारे स्वधर्मी हैं। कर्मोदय से कुछ संकट में आ पड़े हैं। इनकी सहायता करने की आवश्यकता है। तुम इनकी सहायता करोगे तो स्वधर्मी बन्धु की सेवा के फल के भागी होओगे।

श्रावक धर्मज्ञ था और स्वधर्मी-वात्सल्य के महत्व को अच्छी तरह समझता था। अतएव उसने इस युगल की सेवा को सौभाग्य समझ कर आग्रह किया—आप मेरे घर पधारें और मुझे सेवा का अवसर दें। इससे आपको भी आराम मिलेगा और मुझे भी प्रसन्नता होगी।

सौजन्यवश पहले तो मैनासुन्दरी ने जाने से इन्कार कर दिया, किन्तु अधिक आग्रह देखकर उन्होंने जाना स्वीकार कर लिया। दोनों श्रावक के घर चले गए। उस श्रावक को गुरु महाराज के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा थी। उसने सोचा—महाराज ने मुझे सेवा के योग्य समझ कर ही यह सूचना दी है। अतएव उसने अत्यन्त आदर के साथ उन्हें अपने घर में स्थान दिया और प्रेम के साथ उनकी सेवा करने लगा।

श्रीपाल और मैनासुन्दरी भगवान का भजन करते हुए रहने लगे। जब आसौज महीना आया तो गुरु महाराज के आदे-

शानुसार वे नवपद की आराधना के लिए तैयार हुए। आश्विन शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन दोनों ने आयंबिल किया और 'ओं ह्रीं श्रीं क्लीं णमो अरिहंताणं' की बीस मालाएँ फेरीं। जमीन पर सोने और ब्रह्मचर्य पालने का नियम ले लिया। इसी प्रकार दूसरे दिन 'णमो अरिहंताण' के स्थान पर 'णमो सिद्धाणं' की, तीसरे दिन 'णमो आयरियाणं' की, चौथे दिन 'णमो उवज्झायाणं' की, पांचवें दिन 'णमो लोए सव्वसाहूणं' की, छठे दिन 'णमो णाणस्स' की, सातवें दिन 'णमो दंसणस्स' की, आठवें दिन 'णमो चरित्तस्स' की और नौवें दिन 'णमो तवस्स' की माला फेरते रहे। नौ पदों के जितने जितने गुण हैं, उतने उतने 'लोगस्स' का ध्यान करते रहे। इस प्रकार विधि के अनुसार उन्होंने नवपदजी की ओली की आराधना की।

शुद्ध हृदय और परिपूर्ण श्रद्धा के साथ जाप करने का फल यह हुआ कि प्रथम दिवस ही श्रीपाल के शरीर में जो रोग का मैल था, वह गिर गया। नौवें दिन तो अपूर्व चमत्कार देखने में आया। श्रीपाल का शरीर पूर्णरूप से रोगमुक्त हो गया। उसकी कंचनवर्णी काया देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि अभी नौ दिन पूर्व वह कुष्ठ से पीड़ित था।

गृहस्वामी श्रावक को श्रीपाल का शरीर देखकर अत्यन्त हर्ष और विस्मय हुआ। उसने नवपद की महिमा का वखान करते

हुए कहा—देखिए, श्रीपालजी ने नौ दिन तक आयंबिल किया और भगवान् का जाप किया तो इनका शरीर नीरोग हो गया। यह सुन कर लोगों ने कहा—जैनधर्म धन्य है। ऐसे गुरु भी धन्य हैं जिन्होंने इतना सुन्दर, पावन और प्रभावजनक उपाय बतलाया।

श्रीपाल पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर मुनिराज के चरणारविन्द में वन्दन करने गए और अत्यन्त नम्रता के साथ कृतज्ञता प्रकट करने लगे।

उधर श्रीपाल के साथी सात सौ कोढ़ी श्रीपाल को खोज रहे थे। तलाश करने पर उन्हें वे मिल गए। उस समय श्रीपाल ने नवपदजी का ध्यान करके लोटे का प्रासुक जल उन कोढ़ियों पर छिटक दिया। पानी के छींटे लगते ही वे सब भी स्वस्थ हो गए। उन सब का कुष्ठ नष्ट हो गया और शरीर कंचनवर्णा हो गया। सात सौ कोढ़ियों पर इस घटना का अद्भुत प्रभाव हुआ। वे श्रीपाल की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे और उनके संसर्ग में आना अपना अहोभाग्य मानने लगे। उन्होंने श्रीपाल को अपना उद्धारक माना। उन्हें धन्यवाद देते हुए वे अपने अपने घर चले गए।

एक दिन श्रीपाल और मैनासुन्दरी मुनिराज के दर्शन करके जब लौट रहे थे तो मार्ग में अचानक ही उनकी माता कमलप्रभा, जो काफी समय पूर्व उनसे विछुड़ गई थी, उन्हें मिल

गई। श्रीपाल ने माता को देखते ही पहचान गया और एकदम उनके चरणों में गिर पड़ा। उसने मैनासुन्दरी से कहा—अपनी सासू को प्रणाम करो। मैनासुन्दरी ने भी विनयपूर्वक प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीपाल ने अपनी पत्नी की ओर इंगित करते हुए माता से कहा—माताजी! यह सब इसी लक्ष्मी का प्रताप है। यह जैनधर्म की अनुयायिनी है। इसने कोढ़ी की अवस्था में भी मुझे सहर्ष अंगीकार किया और तप के प्रभाव से मुझे रोगमुक्त बनाया। केवल मैं ही नीरोग नहीं हुआ हूँ, वरन् जिन सात सौ कुष्ठियों ने संकट के समय हमें आश्रय दिया था, वे सब भी नीरोग होकर अपने अपने स्थान पर चले गए हैं।

रानी कमलप्रभा यह वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। प्रथम तो बिछुड़े पुत्र का मिलन, फिर नीरोग अवस्था में और फिर धर्मनिष्ठ वधू के साथ। उसके हृदय में हर्ष का पार न रहा। उसने मैनासुन्दरी से कहा—रानी बहू! मैं हृदय से तेरा अभिनन्दन करती हूँ। सचमुच तू लक्ष्मी का अवतार है। आते ही तूने मेरे कुल का उद्धार कर दिया।

कुछ दिन पूर्व मुझे एक महामुनि के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तब मैंने उनसे पूछा—महाराज! मेरे बेटे के शरीर में कुष्ठ रोग है। कृपा कर बतलाइए कि वह कब अच्छा होगा? उससे मेरा मिलन कब हो सकेगा? मेरा प्रश्न

सुन कर मुनिराज ने कहा—बहिन! तेरा पुत्र तो बिलकुल नीरोग हो चुका है। अभी वह एक स्वधर्मी के मकान में आराम से रह रहा है। शीघ्र ही तुम्हारा मिलन होगा।

गुरु महाराज के कथन से मैं इधर आई और तुम लोगों का साक्षात्कार हो गया। अतएव वे गुरु भी महान् उपकारी हैं। चलो, उनके भी दर्शन कर लें।

भाइयो! संसार में सन्त जनों का समागम होना महान् लाभ है। कहा भी है—

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधुसमागमः॥

इस महीमण्डल पर साधु-साध्वी जंगम तीर्थ हैं। उनका परम पुण्य का कारण है। अन्य तीर्थ तो जब फल देंगे तब देंगे, परन्तु साधु के दर्शन से तो तत्काल फल की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार विचार कर श्रीपाल, मैनासुन्दरी और कमलप्रभा, तीनों मुनि महाराज के दर्शनार्थ गए।

कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं और वे इस प्रकार अकस्मात् घटित होती हैं कि साधारण मनुष्य उनके कार्य-कारणभाव को समझ ही नहीं सकता। इसी कारण यह कल्पना

की जाती है कि दृश्य शक्ति की अपेक्षा कोई अदृश्य शक्ति भी है जिसका अभिनय अदृश्य रूप में ही होता है।

यहां भी एक घटना ऐसी ही घटित हुई। श्रीपाल आदि जब मुनिदर्शन के लिए पहुँचे तो उन्होंने देखा कि मैनासुन्दरी की माता रानी रूपसुन्दरी भी वहां उपस्थित हैं। मगर जब रूपसुन्दरी ने अपनी पुत्री के साथ अनुपम रूपलावण्य से सम्पन्न एक नवयुवक को देखा तो उसके हृदय में एक कुशंका उत्पन्न हो उठी। उसने सोचा जिस पुरुष के साथ मैनासुन्दरी का विवाह किया था, वह कोढ़ी और कुरूप था। यह वह तो हो नहीं सकता तो क्या मैनासुन्दरी ने उसका परित्याग करके किसी दूसरे को अपना लिया है? इस प्रकार के विचारों से रूपसुन्दरी अती गम्भीर और उदास हो गई।

जब मैनासुन्दरी की दृष्टि अपनी माता पर पड़ी तो वह एकदम लपक कर उसके पास गई और प्रणाम करके बोली—मां बहुत दिनों में और अचानक ही मिली हो। मगर प्रसन्नता के स्थान पर यह उदासी क्यों दिख रही है?

रूपसुन्दरी कुछ बोली नहीं, उनकी आंखें गीली हो गई। मैनासुन्दरी माता के मनोभाव को ताड़ गई। तब उसने कहा—माताजी! यह आपके वही जामाता हैं और यह इनकी माता, मेरी सासूजी हैं। यह कह कर उसने पिछला समस्त वृत्तान्त

बतलाया कि किस प्रकार नवपद की आराधना के प्रभाव से यह सब परिवर्त्तन संभव हो सका।

मैनासुन्दरी का स्पष्टीकरण सुना तो माता की शंका निर्मूल हो गई। उसके हृदय में अपार आनन्द हुआ, वह अपनी पतिव्रता और धर्मप्राणा पुत्री के प्रति अविश्वास करने के लिए अपने आपको धिक्कारने लगी। प्रकट में उसने कहा—बेटी, तू धन्य है, सौभाग्यशालिनी है। तेरा सौभाग्य अचल हो, मैं तेरे प्रति अपराधिनी हूँ। मेरे अन्तःकरण में तेरे लिए अविश्वास उत्पन्न हो गया था कि तूने मर्यादा का परित्याग करके दूसरे पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। मगर मेरी शंका असत्य सिद्ध हुई मेरी कूंख सफल हुई जिसने ऐसी धर्मनिष्ठ पुत्री को जन्म दिया है।

इस प्रकार कह कर रुपसुन्दरी फिर बोली—बेटी; तुम्हारे पिता ने जब कुष्ठी के साथ तुम्हारा विवाह कर दिया तो मैं क्रोधावेश में अपने पीहर चली गई। मैंने इसे अपना बड़े से बड़ा अपमान समझा था। मगर तेरे भाग्य में अच्छा लिखा था तो बुरा करने की सामर्थ्य किसमें हो सकती है ? जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ।

तत्पश्चात् रुपसुन्दरी अपनी समधिन कमलप्रभा से और जामाता से मिली। हर्ष और आनन्द की लहरें उठने लगीं।

भाइयो ! हम साधु जगह-जगह भ्रमण करते हैं और इस प्रकार की अनेक घटनाएँ देखने-सुनने को मिलती हैं कि भाग्य अनुकूल होने पर अचानक ही अनुकूल संयोग मिल जाते हैं।

वि० सं० २००० में हम कानपुर में चौमासे में स्थित थे, उस समय शिवलाल भाई नामक एक सज्जन मिले और कहने लगे-महाराज ! मेरी लड़की बड़ी होती जा रही थी और उसके लग्न के लिए पैसा चाहिए था। पास में कुछ था नहीं; चिन्ता मे घुल रहा था, मैंने इस निमित्त से व्यापार किया। लड़की के भाग्य से मुझे छह हजार रुपयों का लाभ हुआ और धूमधाम से विवाह कर दिया, परन्तु मैं आज जैसे का तैसा ही हूं।

मैंने कहा-भाई ! सब अपना-अपना भाग्य लेकर आते हैं। लड़की का भी अपना पुण्य-पाप होता है।

रूपसुन्दरी कहने लगी-बेटी ! आज का यह दृश्य देखकर तो मेरे आनन्द की सीमा नहीं है, मुझे देव से सुन्दर कुंवर मिल गया है।

इसके पश्चात् उसने मैनासुन्दरी से पूछा-बेटी ! ये कहां के निवासी और किस वंश के भूषण हैं ?

मैनासुन्दरी ने कहा-माताजी ! आपके जामाता चम्पा नगरी के राजा सिंहरथ के राजकुमार हैं। मेरी सासू वहां की महारानी कमलप्रभा हैं, मगर काल की गति बड़ी विचित्र होती

है। मनुष्य की अवस्था सदा एक-सी नहीं रहती। इनके ऊपर संकटों के पहाड़ टूट पड़े और इनकी जो स्थिति हुई, उससे आप अपरिचित नहीं है, बात यह हुई कि इनके पिता इन्हें पांच वर्ष का छोड़कर परलोक सिधार गए। राज्य के यही एक मात्र उत्तराधिकारी थे, अतःएव राजसिंहासन पर आसीन हुए। वफादार मन्त्री की सहायता से सासूजी शासनसूत्र का संचालन करने लगी मगर इनके काका वीरदमन ने षड्यन्त्र रचा और इन्हें तथा मंत्री को मरवा डालने का प्रबन्ध किया, मंत्री को षड्यंत्र का पता चल गया और तब दूसरा कोई उपाय न रहने के कारण इन्हें माता के साथ चम्पा का त्याग करना पड़ा। वीरदमन ने इन्हें खोजने के लिए अपने सेवक भेजे। उनसे बचने के लिए कोढ़ियों की जमात में छिपकर रहना पड़ा। 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति' अर्थात् संसर्ग से दोष और गुण उत्पन्न होते हैं, यह उक्ति इनके विषय में चरितार्थ हुई। कोढ़ियों के संसर्ग के कारण प्राण तो बच गए मगर कुष्ठ रोग ने घेर लिया। इससे आगे का हाल आप जानती ही हैं। गुरुदेव की कृपा से इन्हें कुष्ठ से छुटकारा मिला और वे सात सौ कोढी भी कुष्ठमुक्त होकर अपने अपने ठिकाने चले गए।

यह वृत्तान्त सुनकर रुपसुन्दरी को कितना आनन्द हुआ होगा, कहा नहीं जा सकता, उसके नेत्रों से हर्ष के आंसू झरने लगे। अपने आपको सँभाल कर वह बोली–बेटी! मुझे अत्यन्त

ग्लानि है कि तुझे देखकर मेरे मन में एक नीच विचार उत्पन्न हुआ; मगर तुम सबको देखकर और परिचय पाकर जो आनन्द हो रहा है, उसे मैं शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर सकती। मेरे भाग्य का सितारा चमक उठा है।

इस प्रकार रूपसुन्दरी आज अपने जीवन को धन्य समझने लगी। जैनधर्म के प्रति उसके मन में गाढ़ी आस्था तो थी ही, उसमें और अधिक सबलता आगई। वह सोचने लगी- सचमुच मनुष्य को कोई दूसरा सुखी अथवा दुःखी नहीं कर सकता। अपना सुख-दुःख अपने ही कर्मों के अधीन है। मेरे पति ने अभिमान के अधीन होकर मैनासुन्दरी को अधिक से अधिक दुःखी बनाने का प्रयत्न किया, पर उसके पुण्य के समक्ष दुःख टिक न सका।

इस प्रकार विचार करती हुई रूपसुन्दरी अपने पितृ-गृह चली गई; वहां जाकर उसने अपने भाई से कहा-भैया, तेरी भाणजी और उसके पति पास ही अमुक स्थान पर हैं। साथ ही उनकी माता भी हैं। तुम जाओ और सन्मान के साथ उन्हें लिवा लाओ।

बहिन का आदेश शिरोधार्य करके वह गया और उन तीनों को राजकीय सन्मान के साथ ले आया, सब लोग वहां आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

कुछ समय के पश्चात् मैनासुन्दरी के पिता को यह सब समाचार विदित हुए; जैनधर्म के महत्त्व का और मैनासुन्दरी के भाग्य परिवर्त्तन का उसके चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह अपनी पुत्री एवं जामाता आदि से मिलने के लिए वहां आया, मैनासुन्दरी के साथ पिता ने जैसा व्यवहार किया था, उसे देखते, कोई दूसरी लड़की होती तो उसके प्रति घृणा प्रकट करती और सीधे मुँह बात भी न करती, मगर मैनासुन्दरी दैवी प्रकृति की नारी थी। उसके अन्तःकरण में द्वेष का लेश भी नहीं था। उसने पूर्ववत् प्रेम के साथ पिता का आदर किया पूर्वोक्त समस्त वृत्तान्त विस्तार के साथ बतलाया।

मैनासुन्दरी का पिता अपने अविवेकपूर्ण कार्य के लिए मन ही मन अत्यन्त लज्जित हो रहा था, मैनासुन्दरी के मुख से समग्र वृत्तान्त सुनकर उसके चरणों में गिर पड़ा और अपनी मूर्खता के लिए क्षमायाचना करने लगा।

मैनासुन्दरी ने कहा-पूज्य पिताजी! आप मुझे लज्जित न करें।

पिता बोला-बेटी, मैंने अपनी ओर से तुझे दुःखी बनाने में कोई कसर नहीं रक्खी, तथापि तू अपने पुण्य के उदय से सुख की भागिनी बनी, वास्तव में तेरा कहना यथार्थ था। मनुष्य अपने अहंकार के कारण ही ऐसा समझता है कि मैंने किसी को

सुखी या दुःखी बना दिया। वास्तव में तो प्रत्येक प्राणी अपने-अपने उपार्जित कर्म के अनुसार ही सुख-दुःख भोगता है जैनधर्म के इस सिद्धान्त पर आज मुझे पूरी तरह श्रद्धा हुई है।

तत्पश्चात् राजा रानी रूपसुन्दरी से भी मिला, उसके सामने भी पश्चात्ताप प्रकट किया। इस प्रकार सबके हृदय स्वच्छ हो गए और अतीत की घटना को जैसे सबने विस्मरण कर दिया।

राजा प्रभुपाल कुछ दिनों तक ससुराल का आतिथ्य ग्रहण करके उज्जयिनी जाने को उद्यत हुआ। रानी रूपसुन्दरी कनकप्रभा, श्रीपाल तथा मैनासुन्दरी को साथ लेकर वह रवाना हुआ और यथासमय उज्जयिनी जा पहुँचा। सभी लोग राजमहल में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

समग्र राज्य में विद्युद् वेग से यह समाचार फैल गया कि महाराज के दूसरे जामाता, जो कोढ़ी थे, देवोपम सौन्दर्य से सम्पन्न हो गए और वे वास्तव में चम्पा के अधिपति हैं।

एक दिन श्रीपाल अश्व पर आरूढ़ होकर वायु सेवन के लिए निकले। उस समय के उनके सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं उन का मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान सौम्य और दीप्तिमान् था। उनका ललाट अर्धचद्र के सदृश था। हथेलियां रक्तवर्ण और दांत अनार के दानों के समान थे। उनका वक्षस्थल

कपाट जैसा चौड़ा था। दोनों भुजाएँ दरवाजे की अर्गला के समान पुष्ट और दीर्घ थी। कमर सिंह की कटि जैसी थी। वह बोलता तो ऐसा लगता जैसे फूल जड़ रहे हों। उसकी ध्वनि मेघ की गर्जना के समान गम्भीर होती थी।

तो श्रीपाल अपनी धुन में मस्त चले जा रहे थे कि उन्हें देख कर एक लड़की ने अपनी माता से पूछा-मां यह कौन हैं ? माताने बेटी के कुतूहल को शान्त करते हुए कहा-लली, यह महाराज के जामाता हैं और राजकुमारी मैनासुन्दरी के पति हैं।

उपर्युक्त शब्द श्रीपाल के कानों में पड़े। यद्यपि उन शब्दों में कोई विशेषता नहीं थी, तथापि श्रीपाल उन्हें सुन कर चौंक उठे। उन्होंने सोचा यही मेरा परिचय है। मैं अपने आप में कुछ नहीं हूँ। ससुर के नाम से ही पहचाना जाता हूं।

नीतिकार कहते हैं जो पुरुष अपने गुणों से प्रख्यात होता है, वही उत्तम पुरुष है। पिता के नाम से पहचाना जाने वाला मध्यम पुरुष है, जो मामा के नाम से पहचाना जाता है वह अधम है। मगर जो अपने श्वसुर के नाम से ख्याती में आता है वह तो अधमाधम है। पुण्यवान् पुरुष अपने नाम से ही प्रसिद्धि में आता है।

तो श्रीपाल के हृदय में यह विचार कांटे की तरह चुभने लगा। उसका चित्त उदास हो गया। वह वायु सेवन करना भूल गया और तत्काल लौट कर राजमहल में जा पहुंचा। वहां भी उसका चित्त उदास ही बना रहा।

राजा प्रभुपाल ने अपने जामाता को उदास अवस्था में देखा तो पूछा कुमार। आज उदासीनता से घिरे क्यों दिखाई दे रहे हो ? क्या यहां कोई असुविधा है ! आपको यथोचित सन्मान में बाधा हुई है ! अथवा राज्य का स्मरण हो आया है ! क्या कारण है !

श्रीपाल ने नम्रता पुर्वक कहा आपकी छत्रच्छाया में असुविधा क्या हो सकती है ! अपमान की भी संभावना कैसे की जा सकती है।

प्रभुपाल बोले-अगर अपना राज्य प्राप्त करना चाहते हो तो चलो सेना लेकर और अपने काका को पराजित करके अपने राज्य पर अधिकार कर लो।

राजा के यह शब्द सुन कर श्रीपाल पुनः विचार में पड़ गये और नीतिकार के वचनों का स्मरण करने लगे कि दूसरे के बल पर शत्रु से जूझना और उसे पराजित करना वीरों का नहीं, कायरों का काम है। अपनी भुजाओं के बलबूते पर जूझना ही वीर पुरुष की शोभा है।

इस प्रकार सोच कर श्रीपाल ने कहा-पिताजी ! आपका कहना यथार्थ है और उसमें स्नेह का रस भरा हुआ है। परन्तु आपकी सेना की सहायता से काका से युद्ध करना मुझे शोभा नहीं देता। मैं अपने सामर्थ्य की परीक्षा करना चाहता हूँ। मेरी

अभिलाषा है कि मैं परदेश चला जाऊं और अपने ही बल से राज्य को हस्तगत करूँ।

श्रीपाल के विचार में आत्मगौरव भरा था। उसका उत्तर राजपुरुष के योग्य था। अतएव प्रभुपाल उसे सुन कर सन्तुष्ट हुए और मौन रह गए।

श्रीपाल का इरादा जब उसकी माता को मालूम हुआ तो उसने कहा—बेटा! यदि तेरा विचार विदेश जाने का है तो मैं यहां रह कर क्या करूँगी? मेरे प्राण तो तेरे अन्दर उलझे हैं। अतएव मैं भी साथ चलूँगी।

श्रीपाल ने कहा—माताजी! मैं जानता हूं कि मेरा विछोह आपको दुस्सह है। तथापि परिस्थिति कुछ ऐसी है कि अभी आपका साथ चलना उपयुक्त न होगा। इससे आपको कष्ट होगा। अतएव अभी आप यहीं रहें। विश्वास रक्खें कि हम शीघ्र ही पुनः मिलेंगे।

आखिर कमलप्रभा मान गई। जब श्रीपाल जाने लगा तो उसे आशीर्वाद देकर बोली—बेटा! कहीं भी जाओ, कष्ट पड़ने पर नवपदजी के जाप को स्मरण रखना और अपने धर्म पर स्थिर रहना।

इस प्रकार हितशिक्षा देकर माता ने मस्तक पर मांगलिक तिलक किया। मैनासुन्दरी आदि से भी विदा लेकर श्रीपाल जब प्रस्थान करने लगा तो माता ने कहा—बेटा, विजयी हो।

माता का भावपूर्ण आशीर्वाद ग्रहण करके श्रीपाल जब विजयमुहूर्त्त में रवाना हुआ तो पुनः पुनः शुभ शकुन होने लगे। शकुनशास्त्री शुभ शकुनों के विषय में कहते हैं:-

खर डाबो विषधर जीमणो, मुर्दा लीजे पूठ।
सुकन भलो छे पंथिया, लावे लक्ष्मी लूट॥

कहा गया है कि मार्ग में बायीं ओर गधा मिले तो आनन्द होता है और वह पुरुष लक्ष्मी प्राप्त करता है। जाते समय सर्प यदि दाहिनी ओर मिलता है तो सब काम सफल होते हैं। और यदि पीठ पीछे मुर्दा मिल जाता है तो जहां जाता है, वहां सब भरे जैसे मिलते हैं।

इस प्रकार श्रीपाल प्रशस्त शकुनों के साथ आगे बढ़ने लगे। वह अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए और अपने पुरुषार्थ को आजमाने के लिए निःशंक भाव से चले जा रहे थे।

आगे बढ़ने पर क्या-क्या घटनाएँ घटित होती हैं और कैसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती हैं, यह सब वृत्तान्त आगे सुनने से विदित होगा।

ओली तप

[२]

भाइयो !

भगवान् तीर्थङ्करों की वाणी में से आपको चतुर्थ अंग श्रीसमवायांग सुनाया जा रहा है। कल उसके बाईसवें समवाय में से शीत और औष्ण्य परीषहों का वर्णन किया गया था। आपको विदित है कि जैन साधु की चर्या बड़ी कठिन है। पूर्ण अहिंसाव्रती अपरिग्रही होने के कारण उनके सामने बहुत-सी कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। उन पर दृढ़ता के साथ विजय प्राप्त करना साधु का धर्म है, परीषहजय से संयम में दृढ़ता आती है और संवर की प्राप्ति होती है। इसी कारण कांटों के पथ पर चलने वाले अनगार परीषहों के सामने झुकते नहीं, वरन् सूरता के साथ उन्हें सहन करते हैं।

बाईस परीषहों में पांचवा परीषह दंशमशक नामक है। अनगार साधु को अनियत स्थानों में ठहरना पड़ता है और कभी-कभी ऐसे स्थान से भी पाला पड़ जाता है जहां डांस-मच्छरों का

बाहुल्य होता है। मक्खी, कीड़ी, मकोड़ों आदि का उपद्रव भी इसी परीषह में सम्मिलित है। जब इस प्रकार का उपद्रव खड़ा हो जाए और दंश-मशक साधु के शरीर को डँसने लगें तो उद्विग्न नहीं होना चाहिए। तपस्या समझ कर समभाव से सहन कर लेना चाहिए, डँसने वाले जीवों पर मन से भी द्वेष नहीं धारण करना चाहिए।

चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर दीक्षा अंगीकार करके ध्यान में लीन हो गए। दीक्षा से पहले उनके शरीर पर बावन चन्दन का लेप किया था और दीक्षा के पश्चात् उन्होंने शरीर पर कोई वस्त्र नहीं रक्खा था। चन्दन की सुगन्ध से आकृष्ट होकर अनेक प्रकार के जन्तु आए और उघाड़े शरीर को डँसने लगे, मगर भगवान् ने न उन्हें रोका और न मन में उद्वेग क अनुभव किया। उन्होंने अपनी आत्मा की ओर उपयोग लगाय और शरीर की ओर ध्यान नहीं दिया।

तो भगवान् के पथ का अनुसरण करने वाले साधक का भी यही धर्म है कि डांस मच्छर आदि का घोर कष्ट उपस्थित होने पर वह समभाव का परित्याग न करे और शान्ति तथा धीरता के साथ इस परीषह को सहन करे।

छठा अचेल परीषह है। जिनकल्पी मुनि वस्त्ररहित होते हैं और स्थविरकल्पी मर्यादित वस्त्र रखते हैं, परन्तु कभी पर्याप्त

वस्त्र न मिले अथवा मैल-कुचैला मिले तो साधु समभाव में स्थिर रहे।

इसके बाद अरति परीषह आता है, साधु के लिए दांत धोने; स्नान करने और शरीर की सेवा-शुश्रूषा आदि करने का निषेध है, और जब इतना निषेध है तो कभी साधु के मन में दुःख भी उपज सकता है। वह सोच सकता है कि दुनियां तो स्नान करती है, परन्तु हम स्नान नहीं कर सकते। दुनियां अंजन-मंजन लगाती है, मगर साधु नहीं लगा सकता। ऐसा विचार करके साधु को संयम के प्रति अरुचि उत्पन्न हो सकती है, किन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए। स्नान और अंजन आदि शृङ्गार के अंग हैं और संसारविरत साधु को शृङ्गार से क्या प्रयोजन है। जो शरीर को ही अपना नहीं समझता, वह शृङ्गार करने की अभिलाषा भी क्यों करे? कदाचित् संयोग और वियोग के कारण भी अरति का प्रसंग उपस्थित हो सकता है, ऐसे अवसर पर साधु को समभाव के सरोवर में अवगाहन करके अरति का उन्मूलन करना चाहिए।

साधु को स्त्रीपरीषह भी सहन करना चाहिए, जगत् में कामभोगों का प्रलोभन और आकर्षण अत्यन्त तीव्र होता है। अतएव कदाचित् कोई स्त्री साधु को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहे तो कामभोगों की असारता का विचार करके वह स्त्रीपरीषह को सहन करे और चित्त में लेश मात्र भी विकार न उत्पन्न होने

दे। जो साधु स्त्री के प्रलोभन में फँस जाता है, वह साधुता से भ्रष्ट हो जाता है। श्रीसूयगडांग सूत्र के चौथे अध्ययन में इस विषय का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। कहा गया है कि-हे साधक! यदि तू स्त्री-प्रलोभन में पड़ जाएगा तो संयम से च्युत हो ही जाएगा, साथ ही तुझे स्त्री का दास होकर रहना पड़ेगा और अनेक प्रकार के जंजाल में पड़ जाएगा। अतएव अपने मन को दृढ़ रख कर धर्म में निरत रहना चाहिए।

फिर चलने का परीषह भी साधु के जीवन में आता है। दुनिया चलने के विषय में कहती है—

> चलना भला न कोस का, बेटी भली न एक।
> देणा भला न बाप का, ईश्वर राखे टेक॥

लोग कोस भर चलना भी बुरा समझते हैं, मगर साधु को तो जिंदगी भर पैदल ही चलना है। साधु चल रहा है और उसके साथी कुछ आगे निकल गए हैं, तब उनके साथ होने के लिए उसे भी तेजी से कदम उठाने पड़ते हैं। तेज चलने से वह थक जाता है। आगे चलने को पांव नहीं उठना चाहते। फिर भी मंजिल तक पहुँचे विना कोई चारा नहीं है। ऐसी स्थिति में मन में वेदना होती है, मगर होनी नहीं चाहिए। समभाव रहना चाहिए। सोचना चाहिए कि स्वेच्छा से मैंने पैदल चलने का व्रत अंगीकार किया है। जीवन को हलका बनाने के लिए यह व्रत बड़े

महत्त्व का है। इस प्रकार विचार कर साधु चर्यापरीषह को सहन क

फिर बैठने का परीषह बतलाया गया है। एक जगह बैठे रहने से भी कष्ट मालूम होने लगता है। शारीरिक कारण से कभी एक ही जगह बैठा रहना पड़ता है तो शारीरिक और मानसिक सुविधा नहीं मिलती और इस कारण दुःख का अनुभव होता है। एक कवि ने तो यहां तक कहा है—

स्त्री पीहर नर सासरे, संजमियो स्थिर वास।
रोता होय अलखामणा, जो मांडे स्थिर वास॥

स्त्री पीहर में जम जाती है तो मां-बाप को अखरती है। पुरुष सुसराल में जाकर पड़ाव डाल दे तो अखरने की बात होती है। किसी ने कहा है—

सासरे का आसरा, घर की खोई कमाई।
चौगटी रोटी पर चित्त दिया, जोगी हुआ जमाई॥

यह संसार व्यवहार की बातें हैं। मेहमान थोड़े ही दिन अच्छा लगता है—

एक दिन का पाहुना, दूजा दिन का पई।
तीसरे दिना विदा न मांगे, उसकी अकल गई॥

मेहमान तो एक दो दिन तक ही कहलाता है और उसकी

खातिरदारी भी की जाती है। अधिक दिनों तक जम जाने पर अच्छा नहीं लगता। इसी प्रकार संयमी साधु यदि विना कारण एक जगह स्थिर रह जाता है तो उसके विषय में लोग तरह-तरह की बातें करने लगते हैं। लोग चाहते हैं—यह यहां से चल दें तो ही अच्छा।

इस प्रकार एक जगह बैठना भी परीषह माना गया है। पुराने सन्त कहा करते हैं—जिसके पाप का उदय होता है वही एक जगह बैठता है। जिसके पुण्य का उदय होता है वह तन्दुरुस्त रहता है और जगह-जगह विचरता है। एक ही स्थान पर स्थिर हो रहने से साधु के द्वारा यथेष्ट उपकार नहीं होता और चिरपरिचय के कारण ममता आदि उत्पन्न हो जाने की भी संभावना रहती है। अतएव साधु तो घूमता-फिरता ही भला। कहा है—

साधु नदी मेहला, चले भुजंगी चाल।
जहँ जहँ साधु संचरे, तिहां तिहां करे निहाल॥

साधु के विचरण से स्थान-स्थान पर उपकार होता है। क्योंकि साधु के वचन और जीवन से जगत् का महान् कल्याण होता है। ठीक ही कहा है—

सरवर तरुवर संत जन, चौथे वूठो मेह।
परोपकार के कारणे, चारों धारी देह॥

साधु का जीवन तो उपकार के लिए ही है। यदि वह एक जगह बैठ जाता है तो उससे उपकार नहीं हो सकता। फिर भी यदि कारणवश एक स्थान पर बैठना पड़े और उससे किसी प्रकार की असुविधा हो तो उसे समभाव से सह लेना चाहिए।

साधु के जीवन में शय्यापरीषह भी आता है। विचरण शील साधु को कभी कहीं साताकारी मकान मिल जाता है, कभी नहीं मिलता। जब मन के अनुकूल मकान नहीं मिलता तो दुःख महसूस होने लगता है। गर्मी में बन्द और सर्दी में खुला उपाश्रय मिलने से असुविधा होना स्वाभाविक है और सर्वत्र समान सुविधा वाला मकान मिलना संभव नहीं है। तो जब मकान न मिले या असुविधा कारक मिले तो साधु को समभाव रखना चाहिए।

भाइयो! पंजाब में विचरण करते समय एक बार मैंने स्यालकोट जाने के लिए विहार किया उस समय गर्मी अत्यधिक पड़ रही थी। उस समय मैंने विचार किया कि यदि चार मील आज शाम को चल लें तो स्यालकोट छह मील ही रह जाएगा। लोगों को सामने आने में तकलीफ कम होगी। यह विचार कर शाम को विहार कर दिया। करीब दो मील चले थे कि जोर की आंधी आई और कई पेड़ उड़ते नजर आने लगे। हजारों पक्षी मर गए। लोग कहते थे जो साधु स्याल कोट जाते हैं, उन्हें कुछ

न कुछ आपत्ति का सामना करना पड़ता है। मुझे उनका कथन स्मरण आगया। उस आंधी में हम तीन साधु एक जगह बैठ रहे और जब उसका जोर कम हुआ तो रवाना हुए। आंधी से उड़ी हुई धूल और रेत से शरीर भर गया और ऊपरसे गर्मी के कारण जो पसीना आया, उससे कच-पच हो गया। आगे जाने पर जो मकान मिला, उसमें वायु का प्रवेश नहीं था। पानी भी वहां प्राप्य नहीं था। इस प्रकार के कष्ट साधु को समभाव से सहन करने चाहिए उत्तराध्ययन के दूसरे अध्ययन में कहा गया है।

पईरिक्कुवस्सयं लद्धं, कल्लाणमदु पावगं।
किमेगराइं करिस्सइ, एवं तत्थऽहियासए॥२३॥

हे सधक! संयममय जीवन में विचरण करते हुए यदि कहीं अमनोज्ञ और कष्टकर मकान मिले या सुविधा जनक न मिले, तब तुझे यही विचार करना चाहिए कि क्या हुआ। ऊंचा-नीचा है तो क्या हो गया! एक ही रात की तो बात है! बीतते क्या देर लगती है। इस प्रकार विचार करके शय्यापरीषह को समभाव से सह लेना चाहिये।

साधु के जीवन में कभी कभी आक्रोश परीषह भी आता है। साधु को आते देख किसी को यों ही क्रोध आ जाता है और आवेश में आकर वह कह देता है याद रखना जो इधर से कभी आया कोई अपशब्द भी कह देता है। यद्यपि साधु किसी का

कुछ बिगाड़ता नहीं, न किसी को कष्ट ही देता है, फिर भी कोई खरे-खोटे वचन कहने लगता है। मगर साधु का यही धर्म है कि ऐसी परिस्थिति में भी वह अपने समभाव को खण्डित न होने दे और उसके प्रति क्रोध न करें।

अर्जुन माली की कथा आपने सुनी है। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् तपस्या की पारणा करने के दिन जब वह भिक्षा के लिए जाते तो उन्हें देखते ही लोगों का क्रोध उमड़ आता था। कोई गाली-गलौज करता, कोई तर्जना ताड़ना करता, कोई पत्थर फेंकता, कोई लकड़ी मारता और कोई धमकाता था। मगर अर्जुन माली मुनी तो क्षमा के अगाध सागर बन चुके थे। वह अखण्ड समभाव से आक्रोश परिषह को सहन करते थे। और जो भी भिक्षा में मिल जाता, उसी को सन्तोष पूर्वक ग्रहण करके पुनः तपस्या में लीन हो जाते थे।

तो भगवान् ने साधु को सम्बोधित करते हुए कहा है, हे साधक! तुझे कोई अपशब्द कहे, गाली दे; तर्जना करे या ताड़ना करे तो तू मन में भी क्रोध मत ला। उसे तू अपना कल्याण मित्र समझ। इससे तेरे कर्मों की निर्जरा होगी, तेरा कल्याण होगा। अगर तू क्रोध के बदले क्रोध करेगा और आक्रोश के बदले आक्रोश करेगा तो अपना अहित करेगा, जिन शासन की अवहेलना करेगा और महान् लाभ से वंचित हो जाएगा।

कहते हैं एक वार एक महात्मा कहीं जा रहे थे। उन्हें किसीने गाली दी। महात्मा सहिष्णु थे। उन्हें क्रोध नहीं आया मगर देने वाले को हित शिक्षा देने के उद्देश्य से वे उसके निकट गए और निपट सहज भाव से बोले, बन्धु, कोई किसी को कोई वस्तु देना चाहे और वह उसे न ले तो उस वस्तु पर किसका अधिकार होता है ?

गुस्से में गाली देने वाले ने कहा-इतनी समझ भी तुम्हें नहीं है। उस वस्तु पर देने वाले का ही अधिकार होगा। वह देने वाले की ही है।

तब महात्मा ने हल्की मुस्कान के साथ कहा—तो जो गाली तुमने मुझे दी है, उसे मैं स्वीकार नहीं करता।

गाली देने वाला लज्जित हो गया और महात्मा की महानुभावता से प्रभावित होकर उनके चरणों में गिर पड़ा।

भाइयों ! कभी-कभी साधु को देखकर मिथ्यात्वी को इतना क्रोध आ जाता है कि वह उसका वध कर डालता है, परन्तु जिनवचनों का ज्ञाता साधु ऐसे विकट समय पर भी कषाय से युक्त नहीं होता, वह यही सोचता है कि यह मुझे शरीर से पृथक् करता है, मेरी आत्मा को नहीं मार सकता। मैं तो सदा के लिए शरीर से पृथक् होने की साधना कर रहा हूं और यह मेरी साधना में सहायता कर रहा है। ऐसा सोचकर साधु समभाव का आश्रय लेता है।

मेतार्य मुनि की आदर्श कथा आपने सुनी है ? मासखमण की पारणा के दिन वे एक स्वर्णकार के घर भिक्षार्थ पहुँचे, उस समय उसने स्वर्ण के यव बनाए थे, वे उसके पास ही रक्खे थे, मुनिराज को आया देख वह भिक्षा लाने के लिए भीतर गया। तभी एक मुर्गा आया और वह यव चुग गया। मुनिराज यह घटना देखते रहे, स्वर्णकार वापिस लौटा तो उसे वह जौ दिखाई नहीं दिए। वह आश्चर्य में पड़ गया। सोचने लगा-मुनि के सिवाय यहां दूसरा कोई आया नहीं उसने मुनिराज से कहा-वह जौ कहां है ? मेतार्य मुनि दुविधा में पड़ गए, अगर वह मुर्गे के चुग जाने की बात कहतें हैं तो मुर्गा मारा जाएगा। नहीं कहते तो स्वय चोर समझे जाएँगे।

आखिर मुनि ने मौन धारण करना ही उचित समझा, इससे स्वर्णकार का पारा चढ़ गया और वह मानने लगा कि यह मुनि की ही करामात है। आखिर वह उन्हें मकान के भीतर ले गया। वहां जाकर उसने मुनि के मस्तक पर गीला चमड़ा कसकर लपेट दिया जैसे-जैसे चमड़ा सूखता गया, मस्तक की नसें टूटने लगीं और मुनि के प्राणपखेरु उड़ गए। उस भीषण वेदना के समय भी उनका समभाव अखंड रहा। एक मुर्गे की प्राणरक्षा के लिए महामुनि ने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया।

स्कंधक मुनि के विषय में आप सुन ही चुके हैं, वे राजकुल में जन्मे थे और वैराग्य के साथ प्रव्रजित हुए थे, पिता

ने उनकी सुरक्षा के लिए पांच सौ सिपाही नियुक्त कर दिये थे। विहार करते-करते वे कुन्ती नगर में पहुंचे। उसी नगर में उनकी बहिन व्याही गई थी। मुनि जब गोचरी के लिए गए तो बहिन ने उन्हें देख लिया। साधुवेष में भाई को देखकर और उनके कष्टों का विचार कर वह बहुत दुःखी हुई, उसकी आंखों में आंसू आ गए। राजा की दृष्टि रानी पर पड़ी और आंखें अश्रुपूर्ण दिखाई दीं तो राजा ने झरोखे में से बाहर देखा, स्कंधक मुनि उसे दिखाई दिए।

भाइयो! मनुष्य का मन एक पहेली है, उसे बूझना बड़ा कठिन है। मुनि को देखकर राजा के मन में एकदम क्रोध उत्पन्न हो गया। उसे ईर्षा हुई, द्वेष हुआ अथवा शंका हुई। कुछ भी हुआ, उसने मुनि का वध करवा देने का निश्चय कर लिया, मगर रानी से कुछ नहीं कहा।

स्कंधक मुनि ने अतीत में जो चिकने कर्म बांधे थे, उनका विपाक भोगने का अवसर आ गया था, राजा ने चाण्डालों को बुलाकर आदेश दिया–उस मुनि को जंगल में ले जाओ और जीतेजी सारे शरीर की चमड़ी उधेड़ लो। चाण्डालों ने राजा के आदेश का पालन किया और शरीर का चमड़ा उतार लिया। मगर धन्य-धन्य हैं वे महामुनि स्कंधक जिन्होंने चाण्डालों पर अथवा राजा पर लेश मात्र भी क्रोध नहीं किया। उन्होंने अनुपम सम-

भाव से वधपरीषह को सहन किया। उस समय उन्होंने यही सोचा कि-मेरी आत्मा अमर है। वह कदापि मर नहीं सकती, नष्ट होने वाला शरीर है, वह मेरा नहीं है। शरीर तो छूटने ही वाला है, आज नहीं तो कल। इस नश्वर शरीर के लिए मैं अपनी आत्मा को क्यों कलुषित करूँ! इस प्रकार भेदविज्ञान का आश्रय लेकर वे समाधि में स्थिर रहे।

भाइयो! अतीत काल के यह उज्ज्वल उदाहरण हमारे समक्ष महान् आदर्श उपस्थित करते हैं कि मुनि को किस श्रेणी का क्षमाशील, सहनशील और विजयशील होना चाहिए। उसके चित्त में भी लेश मात्र आवेश या द्वेष नहीं उत्पन्न होना चाहिए। जो महात्मा इस प्रकार समभाव से वध परीषह को सहन करते हुए प्राणविमुक्त हो जाते हैं, वही सच्चे विजेता हैं। वही जन्म-मरण की शृङ्खला को छिन्नभिन्न करके अजर-अमर बनते हैं।

इस प्रसंग पर गजसुकुमार मुनि को कैसे भुलाया जा सकता है? जिस दिन उन्होंने भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा अंगीकार की, उसी दिन भगवान् से अनुमति लेकर और श्मशान में जाकर बारहवीं प्रतिमा अंगीकार कर ली।

भाइयो! इस प्रतिमा को अंगीकार करने वाले को अवश्य ही उपसर्ग का सामना करना पड़ता है। अगर वह उपसर्ग आने पर अविचल रहता है तो अपना कार्य सिद्ध कर लेता है और

यदि घबरा कर चलायमान हो जाता है तो मृत्यु को या उन्मादादि को प्राप्त होता है।

तो गजसुकुमार मुनि जब ध्यानमग्न खड़े थे, तब सोमिल नामक ब्राह्मण, जिसकी लड़की के साथ उनकी सगाई हुई थी, उधर से निकला। उसकी दृष्टि गजसुकुमार पर पड़ी वो वह क्रोध से पागल हो उठा। उसने सोचा—मोडिया मेरी लड़की को शादी से पहले ही विधवा करके भाग खड़ा हुआ। इसे अपने कर्म की सजा दे दूँ। वह फौरन तालाब से चिकनी मिट्टी लाया और मुण्डित मस्तक पर उसकी पाल बना दी। फिर धधकती चिता में से अंगारे भर लाया और उस पाल के भीतर उड़ेल दिए। इस प्रकार अत्यन्त नृशंस कृत्य करके वह चल दिया।

पर गजसुकुमार मुनि की क्षमाशीलता पर विचार करो। उनका शरीर अतीव सुकोमल था। मुंडित मस्तक पर जब अंगारे रक्खे गए जो भेजे की नसें तड़ातड़ टूटने लगीं। उस समय की स्थिति कितनी हृदयद्रावक रही होगी। उस वेदना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मगर मुनि मन में विचार करते हैं—मेरे श्वसुर ने विवाह के समय अगर पगड़ी बांधी होती तो वह दस-बीस रुपयों की होती; परन्तु आज ऐसी पगड़ी बांधी है जो मेरी आत्मा का कल्याण कर देगी। इस प्रकार समभाव के साथ उस मारणान्तिक कष्ट को सहन करने के कारण तत्काल केवलज्ञान-दर्शन की प्राप्ति हो गई और मुक्ति भी प्राप्त हो गई।

ऐसे महामुनि प्रातःस्मरणीय हैं जिन्होंने शान्तभाव से वधपरीषह को सहन किया।

भाइयो! साधु को याचना परीषह भी करनी पड़ती है। साधु के पास संयमोपयोगी उपकरणों के सिवाय और कुछ भी नहीं होता। वह उपकरण भी उसे याचना करके ही प्राप्त करने पड़ते हैं। जीवनयापन के लिए आहार-पानी, रोगनिवारण के लिए औषध भेषज और अन्य किसी प्रयोजन के लिए अन्य वस्तु याचना करके ही लेनी होती है। बिना याचना किए वह दांत साफ करने के लिए एक तिनका भी नहीं ग्रहण कर सकता। यह भी कोई सामान्य कष्ट नहीं है। कहते हैं—

मांगन गया वह मर गया, मरे सो मांगनहार।
उसके पहले वो मरे, छती वस्तु नट जाय॥

परन्तु साधु याचना के इस कष्ट को भी समभावपूर्वक सहन करता है। याचना के समय वह सोचता है—जो छह खंड के नाथ थे, चौदह रत्नों और नौ निधियों के अधिपति थे, हजारों देव जिनकी सेवा में थे, उन चक्रवर्त्तियों ने भी साधुवृत्ति अंगीकार करके याचनामय जीवन व्यतीत किया था तो तुझे क्यों लज्जा आना चाहिए? श्रीउत्तराध्ययनसूत्र में एक स्थल पर कहा है—

गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणिनो सुप्पसारए।
सेओ अगारवासो त्ति, इइ भिक्खू न चिंतए॥

अ० २, गा० २९

साधु भिक्षा के लिए गया है और सोचता है-इनके आगे कैसे हाथ फैलाऊँ। इस याचनामय जीवन की अपेक्षा तो गृहवास ही भला था, जहां किसी के सामने भीख तो नहीं मांगनी पड़ती थी। परन्तु ऐसा विचार साधु को नहीं करना चाहिए। जिसने सर्वस्व से ममता हटा ली है, जिसका जीवन स्व-परकल्याण के लिए समर्पित हो चुका है और जो कुटुम्ब-परिवार का परित्याग करके समग्र जगत् को अपना परिवार मानने लगा है और जो सब का अपना बन चुका है, उसे भिक्षाजीवन ही शोभा देता है।

तुलसीदास कहते हैं—

तुलसी कर पर कर करो, कर तल कर न करो।
जा दिन कर तल कर करो, ता दिन मरण करो॥

अर्थात्–मनुष्य को हाथ पर हाथ तो करना चाहिए मगर हाथ के नीचे हाथ नहीं करना चाहिए। अर्थात् दान देना चाहिए, मगर लेना नहीं चाहिए। दान लेने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है।

यह कथन उन सामान्य लोगों के लिए है जो पुरुषार्थ से घबरा कर मुफ्तखोर बन जाते हैं और जो दूसरों को कुछ देते नहीं, लेते ही लेते हैं। किन्तु जिसका तन, मन और वचन प्राणी मात्र के कल्याण के लिए अर्पित है और जो ममता का त्यागी होने के कारण अपरिग्रह है, उसके लिए याचना ही धर्म है।

याचनामय जीवन अंगीकार करने से अभिमान का भूत भाग जाता है और जीवन में निरहंकारवृत्ति जागृत होती है।

आगे कहा गया है कि अलाभ भी एक परीषह है। कभी-कभी ऐसा प्रसंग भी आ जाता है कि साधु को याचना करने पर भी अभीष्ट पदार्थ का लाभ नहीं होता; उस समय मन में विषाद उत्पन्न होना अस्वभाविक नहीं, मगर साधु के मन में विषाद नहीं होना चाहिए। कहा भी है—

अज्जेवाहं न लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।
जो एवं पडिसंचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए॥

—उत्तरा० २, गा० ३१

अर्थात्—साधु किसी वस्तु की याचना करने के लिए गृहस्थ के यहां जाय और वहां अभीष्ट वस्तु न मिले तो उसे खेद नहीं करना चाहिए। सोचना चाहिए—आज लाभ नहीं हुआ तो न सही, कल हो जाएगा। समय सदा एक-सा तो रहता नहीं, फिर खेद करने की क्या आवश्यकता है! इस प्रकार विचार करने वाले साधक को अलाभ पीड़ा नहीं पहुँचाता।

तात्पर्य यह है कि अलाभ होने पर साधु को विषाद नहीं करना चाहिए, बल्कि सन्तोष धारण करना चाहिए। कोई चीज मिल जाय तो भला और न मिले तो भी भला! इस प्रकार की सन्तोषवृत्ति यदि जागृत हो गई तो साधु सहज ही हर्ष-विषाद के द्वन्द्व से मुक्त हो जाएगा।

गृहस्थों के लिए भी यही मार्ग सर्वोत्तम है। आप संसार में रहते नाना प्रकार के धंधे करते हैं। दुकान पर सुबह से शाम तक बैठे रहते हैं और गृध्रदृष्टि से देखते रहते हैं कि अब ग्राहक आवे और अब आवे। किन्तु कभी-कभी एक भी ग्राहक नहीं आता। इसके विपरीत जब अन्तराय कर्म टूटता है तो ग्राहक पर ग्राहक आ जाते हैं। एक ही घण्टे में दिन भर की कमाई हो जाती है। तो आपको भी लाभ और अलाभ के अवसर पर हर्ष और विषाद नहीं करना चाहिए, जीवन में शान्ति प्राप्त करने के लिए यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

किसी ने कहा है—

मुर्दे को भी मिलत है, लकड़ी कपड़ा आग।
जीवत चिन्ता जो करे, ताको बड़ो अभाग॥

अरे भाई! जब मुर्दे को भी कफन, लकड़ी और आग मिल जाती है और वह ठिकाने लग जाता है तो तू जीवित होकर क्यों चिन्ता करता है। जब जन्म लिया था तब एक अंगुल कपड़ा भी साथ नहीं लाया था, जाते समय भी साथ नहीं जाएगा मगर इस बीच जीवन के सभी आवश्यक पदार्थ मिल जाते हैं। दुनियां में कहावत प्रसिद्ध है—'जिसे चोंच मिली है, उसे चुग्गा भी मिल जाएगा।' और भी कहा है—

कण वाले को कण मिले, मण वाले को मण खाय।
हंसा तो मोती चुगे वहां को ही मिल जाय॥

वहां को ही मिल जाय कसो तू सौ मण खावे।
मन ने वश कर राखले तिण से मिलसी आय॥
कण वाले ने कण मिले, मण वालो मण खाय।

इस प्रकार कीड़ी को कन और हाथी को मन मिल जाता है, पर जीवन में सन्तोष होना चाहिए। असन्तोषी कुत्ता रोटी के लिए घर-घर फिरता है, मगर सर्वत्र दुरदुराया जाता है और डण्डे मार कर भगा दिया जाता है। अतएव लाभ एवं अलाभ, दोनों स्थितियां में दुःख नही मानना चाहिए, वरन् सन्तोष रखना चाहिए। जो लाभ-अलाभ में समान भाव रखता है, उसका जीवन उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो जाता है।

श्रीपाल चरित्रः—

यह बात श्रीपाल के चरित्र द्वारा आपके समक्ष उपस्थित की जा रही है। कल बतलाया गया कि श्रीपाल ने अपने ही पुरुषार्थ से अपना भाग्य चमकाने का निश्चय किया। मैनासुन्दरी से उसने कहा—प्रिये! मैं अब परदेश जाना चाहता हूं। जब मैनासुन्दरी ने इसका कारण पूछा तो उसने कहा—मैं अपने बल-बूते पर ही प्रख्यात होना चाहता हूं और अपने पितृवंश को उज्ज्वल करना चाहता हूं।

मैनासुन्दरी यद्यपि अपने पति की भावना को समझ गई और मन ही मन में उसकी सराहना भी करने लगी। उसने पति

के उच्च बिचारों के लिए गौरव अनुभव किया। तथापि पति वियोग की कल्पना से उसका मन मुरझा गया। उसने कहा—प्राण· नाथ ! आपका कथन यथार्थ है। पुरुष को अपने ही नाम से प्रख्यात होना चाहिए। मगर मैं आपकी अर्धांगिनी हूं। मुझे साथ लेते चलिए। राम बनवास के लिए गए थे तो सीता भी उनके साथ थी। सुख-दुःख में भाग लेने के लिए पत्नी का साथ रहना ही उचित है।

श्रीपाल ने कहा—प्रिये ! मैं तुम्हें छोड़ कर नहीं जाऊँगा। तुम मेरे हृदय में आसीन रहोगी। मगर शरीर से तुम्हारा यहीं रहना उचित है। मेरा कोई ठिकाना नहीं है। कहां जाऊँगा और क्या करूंगा, यह निश्चित नहीं है। अतएव तुम यहीं सुख से रहो और माताजी की सेवा करो। नवपदजी का ध्यान करना और दान देना।

मैनासुन्दरी—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। जो कहा है वही करूंगी। किन्तु यह तो बतला जाइए कि आपका पुनः समागम कब होगा ?

श्रीपाल—ठीक बारह वर्षों के बाद अष्टमी के दिन में लौट आऊँगा। अष्टमी के दिन मेरी प्रतिक्षा करना। मैं एक बड़े उद्देश्य को सिद्ध करने जारहा हूँ तो इतना समय लगना संभव है। मगर मैंने जो कहा है, उसे तुम पाषाणरेखा समझना।

मैनासुन्दरी ने कहा–प्राणनाथ ! आप खुशी-खुशी पधारिए और सुयश, सुख्याति तथा सफलता प्राप्त करके सकुशल लौटिए। जब तक आप नहीं पधारेंगे, मैं सचित्त जल और वनस्पति का सेवन नहीं करूंगी और एक आसन पर बैठ कर एक वार ही भोजन ग्रहण करुंगी। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए भूमि पर शयन करुंगी। मैं धन्य घड़ी और धन्य भाग्य तभी समझूंगी जब आपके पुनः दर्शन होंगे।

कुछ रुक कर मैनासुन्दरी ने पुनः कहा–यद्यपि मुझे आपके ऊपर पूर्ण विश्वास है, तथापि नारीहृदय की दुर्वलता मुझे एक निवेदन करने की प्रेरणा कर रही है। आप पुण्यवान हैं, सुन्दर हैं और सुयोग्य हैं। अनेक कुलीन कन्याएँ आपकी ओर आकृष्ट होंगी और आप इनका पाणिग्रहण करेंगे। तथापि मेरी प्रार्थना यह है कि आप मुझे भूल न जाएँ। आपने आने की जो अवधि बतलाई है, तब तक मैं आपकी प्रतिक्षा करुंगी उसके बाद आप न आए तो मैं गुरुजी के निकट दीक्षा धारण करके साध्वी बन जाऊँगी।

श्रीपाल के चेहरे पर अन्तिम बात सुन कर हल्की-सी स्मितरेखा खिच गई। उसने कहा–प्रिये ! मेरी यह स्थिति तुम्हारी बदौलत ही है। मेरे ऊपर तुम्हारा महान् उपकार है। विश्वास रक्खो, मैं अपने वचन का निर्वाह करने में कुछ भी कसर शेष नहीं रक्खुंगा और निश्चित समय पर आऊँगा।

इस प्रकार पत्नी को आश्वस्त करके, ढाल-तलवार साथ लेकर और सब से यथोचित विदा लेकर श्रीपाल ने एकाकी प्रस्थान कर दिया।

शकुनशास्त्री कहते हैं परदेश जाने की शीघ्रता हो और दूसरा कोई शुभ मुहूर्त न मिलता हो तो रात्री में टिमटिमाते तारे देख कर ही रवाना हो जाना चाहिये। और सब से उत्तम मुहूर्त्त तो अन्तः करण का उत्साह है। स्वयं को आत्म विश्वास होना चाहिए। अगर हृदय में धुकधुक होगी तो हानि भी हो सकती है। अतएव पूर्ण उत्साह और विश्वास के साथ प्रस्थान करना चाहिए।

श्रीपाल उत्साह और विश्वास के साथ रवाना हो गए। गांव के बाद गांव और नगर के बाद नगर पीछे छूटने लगे। एक समय वह जा रहे थे कि रास्ते में चम्पा के वृक्ष के नीचे ध्यान में मग्न एक पुरुष दृष्टिगोचर हुआ। इन्हें अपनी ओर आते देख उसने भी प्रसन्नता प्रकट की, ज्यों ही श्रीपाल उसके निकट पहुँचे, उसने बड़े प्रेम के साथ कहा–हे भाई! जरा इधर आइए। गुरु ने मुझे विद्या बतलाई है, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी वह सिद्ध नहीं हो रही है। क्या आप मेरी सहायता करेंगे?

श्रीपाल–मैं सहायता करने को तैयार हूँ। कहिए, क्या सहायता करनी होगी?

उस व्यक्ति ने कहा—बस आप तलवार निकाल कर मेरे पास खड़े हो जाइए।

श्रीपाल की इस सहायता से उसने पुनः विद्या की साधना की तो इस बार थोड़ी-सी देर में ही वह सिद्ध हो गई।

उस पुरुष ने ध्यान समाप्त करके कहा—भाई, आप बड़े पुण्यवान् हैं। आपके निमित्त से मेरा कार्य सिद्ध हो गया, आपका उपकार मैं चुका नहीं सकता, फिर भी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए दो वस्तुएँ देना चाहता हूं। एक के प्रभाव से आप अगाध जल के सागर से भी सकुशल पार पहुँचेंगे—जल आपको डुबा नहीं सकेगा, दूसरी वस्तु के प्रभाव से आपके शरीर पर शस्त्रप्रहार का असर नहीं होगा, घाव नहीं लगेगा।

उस व्यक्ति से यह दोनों चीजें लेकर श्रीपाल आगे बढ़े। वह व्यक्ति, जो विद्याधर था; उनके साथ ही चल रहा था। वह दोनों चलते-चलते एक पहाड़ पर पहुँचे जहां दूसरा विद्याधर स्वर्णविद्या साध रहा था। परन्तु उसे भी सिद्धी नहीं प्राप्त हो रही थी। यह देखकर पहले विद्याधर ने कहा—भाई, मेरा कार्य इस भाग्यशाली युवक के निमित्त से सिद्ध हुआ है। तुम भी इसकी सहायता लोगे तो तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध हो जाएगा।

विद्याधर की बात सुनकर उसने भी श्रीपाल से सहायता की याचना की, श्रीपाल ने कहा—मैं आपकी सेवा के लिए प्रस्तुत

हूं। आप साधना आरम्भ कीजिए।

विद्याधर ने विद्यासाधना की और साधना फलवती हुई। उसके सामने सोने का पुरुष बन गया।

भाइयो! पुण्यशाली पुरुष के निमित्त एवं सान्निध्य से कार्यसिद्धि में देरी नहीं लगती, पुण्य का प्रभाव बुद्धि से भी अगोचर है।

हां, तो दूसरे विद्याधर ने कहा—कुमार! आपके कारण मेरा कार्य सिद्ध हुआ है, अतएव आप ही इसे ले जाइए। मगर श्रीपाल ने उसे ग्रहण करने से इन्कार कर दिया।

भाइयो! आज भी यदि जानकार हो तो इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। दिल्ली का बिड़ला मन्दिर प्रसिद्ध है और हजारों आदमी उसे देखने जाते हैं, मगर सूक्ष्म बातों की ओर सब का ध्यान नहीं जाता। मैंने भी वह मन्दिर देखा है और उसकी सूक्ष्म बात पर भी ध्यान दिया है। वहां एक शिलालेख लगा है जिसमें उस तथ्य का उल्लेख है कि अमुक व्यक्ति ने अमुक तिथि को सोना बनाया था।

मेरे सामने भी ऐसी चीज आई थी, परन्तु मैंने सोचा—मैं इस झंझट को छोड़कर बाबाजी बना हूँ। मेरे पास यह होगा तो फिर चक्कर में पड़ जाऊँगा और दुनिया पीछा नहीं छोड़ेगी।

स्व० पूज्य श्रीहुक्मीचन्दजी म० ने सोना बनाने की विधि

के पन्ने पानी में भिगो कर परठ दिए थे। मैंने भी उसे नहीं लिया।

हां, तो विद्याधर ने जब स्वर्णपुरुष श्रीपाल को देना चाहा तो श्रीपाल ने लेने से इन्कार कर दिया। मगर विद्याधर नहीं माना और उसने उसका एक हिस्सा श्रीपाल को दे ही दिया।

श्रीपाल वहां से चल कर भड़ौंच पहुंचे। उन्होंने उस स्वर्ण पुरुष से अस्त्र शस्त्र खरीदे और सेना भी तैयार की। उन्होंने एक तावीज बनवाया और पूर्वोक्त दोनों वस्तुएँ उसमें रख कर अपनी दाहिनी भुजा पर बांध लिया।

उन दिनों कौशाम्बी में राजा रथवाहन राज्य करता था। वहां धवल नामक एक सेठ भी रहता था। वह किराने से भरे पांच सौ जहाज लाया। उसके साथ इतना सामान था कि बारह वर्ष तक खाने पर भी समाप्त न हो। रक्षा के लिए दस हजार सिपाही उसके साथ थे। मगर भड़ौंच की खाड़ी में उसके सब जहाज अचानक अटक गए। सेठ असमंजस में पड़ गया। तब एक वीर पुरुष सेठ के पास पहुंचा और बोला—अगर तुम किसी लक्षणयुक्त पुरुष की बलि दो तो जहाज आगे चल सकते हैं।

धवल सेठ ने कहा—ठीक है, ऐसा ही करूँगा।

फिर धवल सेठ यथोचित भेंट लेकर राजा के पास गया। भेंट सामने रखकर उसने कहा—महाराज ! बलि चढ़ाने के लिए

मुझे बत्तीस लक्षणों से सम्पन्न एक ऐसा पुरुष चाहिए जिसके आगे-पीछे कोई न हो और जिसकी फरियाद करने वाला भी कोई न हो। तो क्या मैं ऐसे पुरुष को ढूंढ कर ले जा सकता हूँ ?

राजाने धवल सेठ को आज्ञा दे दी और जब राजाज्ञा हो गई तो उसे ले जाने से रोकने वाला कौन था ? सेठ ने अपने आदमियों को आज्ञा दी-इधर-उधर जाओ और एक ऐसे पुरुष को लेकर आओ जिसके आगे-पीछे कोई न हो और जो लक्षणों से सम्पन्न हो।

सेठ के आदमी सर्वत्र फैल गए। उनमें से कुछ एक उद्यान में भी जा पहुंचे जहां श्रीपाल सो रहे थे। सोते हुए श्रीपाल पर उनकी दृष्टि पड़ी और पास पहुँच कर वे समझ गए कि यह लक्षणसम्पन्न पुरुष प्रतीत होता है। उन्होंने यह अनुमान भी कर लिया कि यह कोई परदेशी है और इसका यहां कोई कुटुम्बी नहीं है। सिपाही श्रीपाल को घेर कर बैठ गए और उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगे।

थोड़ी देर बाद श्रीपालजी की नींद टूटी और वे आंखें मसलते हुए उठे तो चारों ओर सशस्त्र सिपाहियों को देख कर आश्चर्य में पड़ गए। सोचने लगे-मामला क्या है ? यह लोग मुझे घेर कर क्यों खड़े हैं ? आखिर श्रीपाल ने उनसे घेरने का कारण पूछा तो उनमें से एक ने कहा—नौजवान ! हम तुम्हें

पकड़ कर ले जाना चाहते हैं।

श्रीपाल ने कहा-पकड़ लेना चाहते हो? मगर किस अपराध में?

सिपाही—अपराध कुछ नहीं है, आवश्यकता है। यह कह कर सिपाही ने उन्हें बतलाया कि कौशाम्बी के धवल सेठ के पांच सौ जहाज किस प्रकार अटके पड़े हैं और उनके चलने के लिए लक्षणसम्पन्न पुरुष के बलिदान की आवश्यकता है। सिपाही ने यह भी बतला दिया कि इसके लिए राजा की अनुमति प्राप्त कर ली गई है और आपकी कोई फरियाद नहीं सुनी जाएगी।

श्रीपाल ने कहा—तुम मेरी बलि चढ़ाना चाहते हो तो मुझे भी मौत से डर नहीं है। मगर मरने से पहले मैं तुम्हारे सेठ से मिलना चाहता हूँ।

सिपाही श्रीपाल को धवल सेठ के पास ले गए। उन्होंने कहा-स्वामी, आपके आदेशानुसार हम इस पुरुष को ले आए हैं। आगे आपकी जो इच्छा हो, कीजिए।

श्रीपाल की ओर गौर से देख कर सेठ ने कहा-ठीक है। इसे ले जाओ। स्नान करा कर, शरीर पर चन्दन का लेप कर और सुन्दर वस्त्र पहना कर इसकी बलि दे दो।

सेठ का कथन सुन कर श्रीपाल बोले—सेठ: तुमने यह

पापमय विचार क्यों किया ? आखिर तुम अपने जहाजों को ही तो चलाना चाहते हो। इसके लिए मनुष्य की हत्या करने की क्या आवश्यकता है ? तुम मूर्खों के सरदार जान पड़ते हो। किस मूढ़ ने तुम्हें बतलाया है कि मनुष्य की बलि देने से जहाज चल पड़ेंगे ?

धवल सेठ बोले नवयुवक ! मैं मुर्खों का सरदार हूँ या बुद्धिमानों का, इसकी चिन्ता छोड़ो अपनी चिन्ता करो। अन्त समय में ईश्वर का चिन्तन करना चाहो तो कर लो।

श्रीपाल आखिर क्षत्रिय थे। सेठ की बात सुनने से उन्हें जोश आ गया। उन्होंने कहा कौन ऐसा है जो जिन्दगी से ऊब गया है और मेरा अनिष्ट करने की सोचता है। जिसकी हिम्मत हो, मेरे सामने आ जाए। देखता हूँ, किसने मां का दूध पीया है ?

श्रीपाल को अकड़ते देख सेठ बोला-सैनिको ! सुनते क्या हो ! इसे पकड़ कर ले जाओ और अपना काम करो।

यह सुनते ही श्रीपाल ने म्यान में से तलवार निकाली और सामना करने की तैयारी करली। सैनिक श्रीपाल की उस समय की मुखमुद्रा देख कर भयभीत हो उठे। श्रीपाल के चहरे पर क्षात्रोचित तेज जाज्वल्यमान हो उठा। वह अजेय प्रतीत होने लगे।

सैनिकों ने अपने अपने शस्त्र निकाले, परन्तु श्रीपाल की तलवार चलाने की अपूर्व कुशलता के कारण वे उसके समीप भी नहीं फटक सके।

धवल सेठ यह दृश्य देख विचार में पड़ गया। उसने सोचा यों तो खून खच्चर हो जाएगा और मेरे सैनिक मारे जाएँगे इसे नरमाई से वश में करना ही ठीक है। यह सोच कर और वणिक बुद्धि से काम लेकर धवल सेठ ने हाथ जोड़ कर कहा भाई, क्षमा करो, जरा शान्ति धारण करो। मुझसे भूल हो गई कि मैंने तुम्हारे प्रति ऐसा दुर्विचार किया।

श्रीपाल बोले—सेठ, तुम वणिक् नहीं, अर्थपिशाच हो। तुम्हारे अन्तःकरण में पाप बसा है। तुम न्यायनीति को नहीं मानते। अतएव मैं तुम्हारी जान लेकर ही मानूँगा। तुम्हारे जैसे निरपराध मनुष्यों को सताने वाले लोग इस धरती के भार हैं। तुम्हें मार कर मैं पृथ्वी को भारहीन बनाऊँगा।

धवल सेठ श्रीपाल के प्रभाव से प्रतिहतबुद्धि हो गया। उसने हाथ जोड़ कर कहा-तुम्हारा कहना यथार्थ नहीं है कि मैं अर्थपिशाच हूँ, मगर परिस्थिति ने मुझे बाधित किया है। मैं मानता हूँ कि मैंने पाप किया है पर इस पापाचरण के सिवाय अन्य कोई मार्ग मेरे पास नहीं रहा है। मेरे पांच सौ जहाज खाड़ी में अटके पड़े हैं। उन पर मेरा और मेरे परिवार का

भविष्य निर्भर है। अगर आप दूसरा कोई भी मार्ग निकाल सकें, जिससे कि जहाज चल सकते हों, तो मुझे पाप का यह मार्ग अपनाना अभिष्ट नहीं है।

श्रीपाल ने कहा-सेठ, यदि तुम अपना काम ही निकालना चाहते हो तो चलो मेरे साथ। मैं आनन-फानन तुम्हारा कार्य कर देता हूँ।

धवल सेठ अतीव नम्र होकर बोला—मैं आजीवन आपका आभारी रहूंगा। चलिए, मैं आपके साथ ही चलता हूं।

श्रीपाल धवल सेठ के साथ जहाजों के पास पहुँचे। उन्होंने उसी समय नवपदजी का ध्यान किया। ध्यान करके जहां जहाज अटक रहे थे, वहां एक लात मारी। लात का आघात लगते ही जहाज चल पड़ा।

भाइयो! मेवाड़ में कोठारिया नामक ग्राम है। वहां के रावजी का विचार हुआ कि नाथद्वारा जाकर श्रीनाथजी के दर्शन करूँ। यह विचार करते वे रात में ही नाथद्वारा पहुंच गए। देखा तो सारे दरवाजे बंद थे। उन्होंने पहरेदारों से दरवाजा खोलने को कहा। मगर वे असमय में द्वार नहीं खोल सकते थे। अतएव उन्होंने कहा—रावजी, क्षमा कीजिए। इस समय किसी के लिए भी द्वार नहीं खुल सकते।

जब रावजी ने देखा कि पहरेदार द्वार नहीं खोलेगा तो वे

वे जोश में आकर पांच-सात कदम पीछे गए और फिर दौड़ते हुए आकर दरवाजे में कस कर ऐसी लात मारी कि दरवाजा टूट कर गिर पड़ा।

भाइयो ! अवसर आने पर पुण्यवान् के शरीर में अपार बल आ जाता है। श्रीपालजी के पास पुण्य का प्राग्भार था, अतएव एक लात लगते ही जहाज जैसी भारी चीज भी चलने लगी। यह उनके पुण्य का ही विस्मयजनक फल था। पुण्य के प्रभाव से कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं, जिनकी कल्पना भी साधारणतया नहीं की जा सकती।

लोग पुण्य के फल को तो चाहते हैं, मगर जिन प्रशस्त कार्यों से पुण्य का संचय होता है उन्हें नहीं करते। दीन-दुखियों की सेवा करने से, उन्हें साता पहुँचाने से और दान देने से पुण्य की प्राप्ति होती है। जो ऐसे कार्य करते हैं, वे ही पुण्यफल के भागी होते हैं। पुण्य किये विना ही जो पुण्य का फल चाहते हैं, वे अनाज बोये विना ही फसल काटना चाहते हैं। ऐसा कभी हुआ नहीं, हो भी नहीं सकता। अतएव भाइयो ! अगर आप श्रीपालजी की भांति पुण्य का फल चाहते हैं तो उनके समान सत्कृत्य करो, धर्मक्रिया करो। आपको भी इसी प्रकार फल प्राप्त होगा।

हां, तो श्रीपाल की लात के आघात से जहाज का चलना

देख धवल सेठ चकित रह गया और इतना प्रभावित हुआ कि उनके चरणों में गिर पड़ा।

धवल सेठ इस उपकार के बदले श्रीपाल को क्या देता है और श्रीपाल क्या कहते हैं, इत्यादि विवरण आगे सुनने से विदित होगा।

केन्टोनमेंट बैंगलोर }
१०-१०-४६ }

ओली तप

[४]

भाइयो !

श्रीमत्समवायांग सूत्र में आपको बाईस परीषहों का वर्णन सुनाया जा रहा है। उनमें से भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी दंशमशक आदि परीषहों पर प्रकाश डाला जा चुका है। उनके आगे सोलहवां रोग परिषह है। उसका वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि साधु जब शरीर धारी होता है तो उसे कभी कभी रोग का भी सामना करना पड़ता है।

भाइयो ! कहा जाता है कि इस शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम हैं और एक एक रोम के अन्तर्गत पौने दो दो रोग हैं। एक एक रोग की औसतन सवा दो दो औषधियां हैं। ऐसी स्थिति में यह आशा नहीं की जा सकती कि साधु का शरीर सदा सर्वदा नीरोग ही रहेगा। यद्यपि वह अनशन आदि तप करते रहते हैं, मर्यादित आहार करते हैं, गरिष्ठ भोजन नहीं लेते और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, तथापि मौसिम की प्रतिकूलता आदि

कारणों से कभी कभी रोग ग्रस्त हो ही जाते हैं। मगर रोग ग्रस्त हो जाने पर भी उनको सचित औषध का सेवन नहीं करना चाहिए। इस तथ्य को समझाने के लिए सनत्कुमार चक्रवर्ती का उदाहरण दिया गया है।

सनत्कुमार चक्रवर्त्ती के शरीर का सौन्दर्य असाधारण था। उसे देख कर न केवल मनुष्य ही, बल्कि देव भी और उन में भी देवराज इन्द्र भी विस्मित हुए बिना नहीं रहता था। एक दिन स्वयं इन्द्र ने अपनी सभा में देवगण के समक्ष उनके रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा की थी। इन्द्र ने कहा था आज मर्त्यलोक में सनत्कुमार चक्रवर्त्ती के समान रूपवान् पुरुष दूसरा कोई नहीं है।

इन्द्र की बात एक देवता को अच्छी नहीं लगी। उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने उसके रूप को स्वयं देखने एवं परखने का विचार किया। तदनुसार वह वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर के, शरीर को धूलिधूसरित करके, फटे हाल, हांपता हुआ सनत्कुमार चक्रवर्त्ती के महल के द्वार पहुँचा। उसने द्वारपाल से चक्रवर्त्ती के दर्शन करने को कहा। तब द्वारपाल भीतर गया और चक्रवर्त्ती से निवेदन किया महाराज! एक अत्यन्त वृद्ध ब्राह्मण आपके रूप की प्रशंसा सुन कर दूर से आया है। वह आपके दर्शन का अभिलाषी है। जैसा श्रीमान् का आदेश हो, उसे सूचित किया जाय।

चक्रवर्ती ने कहा मैं शयन करके अभी उठा हूं। इस समय किसी से नहीं मिल सकता।

द्वारपाल ने आकर ब्राह्मण को यह उत्तर सुनाया तो उसने कहा भाई, एक बार और कष्ट करो। महाराज की सेवा में निवेदन कर दो कि गरीब ब्राह्मण बहुत दूर से चल कर आया है और उसे अपनी जिन्दगी का भरोसा नहीं है। अतएव अभी दर्शन देने की दया करें।

वृद्ध ब्राह्मण की यह बात सुनकर महाराज ने उसे भीतर बुलवा लिया। ब्राह्मण द्वारपाल के साथ अन्दर गया और चक्रवर्त्ती के रूप को देख कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। मन ही मन सोचने लगा इन्द्र ने यथार्थ ही प्रशंसा की थी। प्रकट में बोला. महाराज, आपका सौन्दर्य निसन्देह अनुपम है। मैंने जैसी प्रशंसा सुनी थी, वैसी ही सुन्दरता सामने देख रहा हूँ।

ब्राह्मण का कथन सुन कर सनत्कुमार के मन में अभिमान का विष बीज अंकुरित हो गया। मन में प्रसन्न हो कर उन्होंने कहा भूदेव! अभी तो मैं शय्या से उठा ही हूं। तुम्हें मेरी सुन्दरता देखनी है तो स्नान करके; वस्त्र भूषणों से सुसज्जित होकर जब राजसिंहासन पर आसीन होऊं, तब देखना। जब बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजा मेरी सेवा में उपस्थित हों और मैं राजकीय वेष भूषा में होऊं, तब देखने से तुम्हें विशेष सन्तोष प्राप्त होगा।

ब्राह्मण ने कहा महाराज! जो आज्ञा! मैं राजसभा में उपस्थित होऊंगा।

ब्राह्मण चला गया। तत्पश्चात् सनत्कुमार ने शौचादि से निवृत्त होकर शरीर पर पीठी करवाई, सुगन्धित जल से स्नान किया और फिर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। गले में चौसठ लड़ों का हार, कानों में कुण्डल, कमर में कटिसूत्र आदि आभरण पहने। तदनन्तर महल से इस प्रकार निकला जैसे बादलों में से सूर्य निकला हो। राजसभा में पहुंचकर वह सुसज्जित सिंहासन पर आसीन हुए। उसी समय उन्हें उस वृद्ध ब्राह्मण का स्मरण हो आया। तब उन्होंने अपने एक सेवक को उसे बुला लाने का आदेश दिया। सेवक ब्राह्मण को बुला कर ले आया। ब्राह्मण ने गम्भीर दृष्टि से महाराज को देखा और कहा महाराज, वस्त्र-भूषणों से आप अत्यन्त सुन्दर दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु पहले जो बात थी, अब नहीं है। तब का सौन्दर्य आपका था, अब का सौन्दर्य मुख्य रूप से वस्त्राभूषणों का है।

सम्राट् चकित रह गए। ऐसी बात उन्होंने इससे पूर्व कभी नहीं सुनी थी। अतएव वह बोले—वृद्ध महाशय! आप कहते क्या हैं? क्या मेरे उस सौन्दर्य में कोई कमी आ गई है।

ब्राह्मणरूपधारी देव बोला—महाराज, उद्दंडता क्षमा हो आपके शृङ्गार में किसी प्रकार की कमी नहीं है, परन्तु मैं आपके

सौन्दर्य की बात कहता हूं। इस बीच आपके शरीर में विकृति उत्पन्न हो गई है, अतएव अब पहले जैसा सौन्दर्य नहीं रहा। संभव है, आपको मेरे कथन पर विश्वास न हो। तो आप पीक दानी मँगवा कर उसमें थूक कर देख लीजिए। आपको अपने शरीर की वास्तविकता का पता लग जाएगा।

सम्राट् ने ब्राह्मण की बात की परीक्षा करने के लिए पीक-दानी में जो थूका और गौर से देखा तो थूक में बिलबिलाते कीड़े नजर आए। यह दृश्य देखकर सम्राट् चिन्ताग्रस्त हो गए। सोचने लगे—इतनी-सी देर में शरीर में इतना महान् परिवर्त्तन हो गया। वास्तव में यह शरीर नाशवान् है और निस्सार है। मैं व्यर्थ ही इसके सौन्दर्य का अभिमान कर रहा हूं।

सनत्कुमार चक्रवर्त्ती के जीवन की दिशा ही बदल गई। उनकी विरक्ति इतनी बढ़ी कि वे साधु बन गए और तप में लीन हो गए। उनके शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हुए सात सौ वर्षों तक वे रोगपीड़ित बने रहे, परन्तु उन्होंने चिकित्सा नहीं करवाई और न शरीर की परवाह की।

शारीरिक रोगों के प्रति उनकी उदासीनता, शरीर सम्बन्धी विरक्ति एवं तपस्विता को देखकर इन्द्र ने पुनः अपनी सभा में प्रशंसा की। कहा—रोग तो दूसरों को भी होते हैं परन्तु मुनि सनत्कुमार के समान रोगपरीषह को सहन करने वाला दूसरा

कोई नहीं है। इस प्रशंसा को सुन कर फिर एक देव के मन में परीक्षा लेने का विचार हो आया। वह देव वैद्य का रूप बना कर आया और सनत्कुमार मुनि से कहने लगा—महाराज! आपके शरीर में कई रोग व्याप्त हैं। आप उनसे कष्ट पा रहे हैं। मेरी दवा का सेवन कीजिए। रोगमुक्त हो जाएँगे।

महात्मा सनत्कुमार ने उत्तर दिया-भाई, तुम्हारी भावना अच्छी हो सकती है, परन्तु मुझे इन रोगों के कारण कोई पीड़ा नहीं है। तपस्या के कारण मुझे ऐसी लब्धियां प्राप्त हैं कि अभी समस्त रोग दूर कर सकता हूं तथापि ऐसा करने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की थी।

यह कह कर उन्होंने अपना थूक शरीर पर लगाया कि उसी क्षण शरीर सर्वथा नीरोग हो गया।

कहने का अभिप्राय यह है कि सनत्कुमार मुनि सात सौ वर्षों तक समभाव से रोगपरीषह सहन करते रहे, क्योंकि उन्हें पूर्ण रूप से विश्वास था कि यह शरीर और है तथा मैं और हूँ। अगर सभी साधुओं में इतनी सहनशक्ति नहीं होती, अतएव वे दवा लेते हैं तो भी सचित्त नहीं लेते। कदाचित ऐसा भी प्रसंग आ जाता है कि मुनि को दवा का संयोग ही नहीं मिलता। तो ऐसी परिस्थिति में समभाव धारण करके रोगपरीषह को सहन करना चाहिए और कभी विकल नहीं होना चाहिए।

जब शरीर ठीक नहीं रहता तो नीचे घास-फूस बिछाना पड़ता है। परन्तु वह भी गृहस्थ के यहां से मांगकर ही लिया जाता है। कभी तो वह सुखदायक मिल जाता है, कभी नहीं मिलता। जब सुखद नहीं मिलता तो साधक के शरीर में चुभता है।

भाइयो ! एकबार हम जयपुर की ओर विहार कर रहे थे। मार्ग में विश्राम के लिए ठहरे तो बिछाने के लिए जवार की घास के सिवाय और कुछ भी नहीं मिला। विवश होकर वही लेनी पड़ी और उसी को लेकर रात बितानी पड़ी। अभिप्राय यह है कि साधु को कहीं अनुकूल और कहीं प्रतिकूल घास का बिछौना मिलता है। तथापि साधु को यह परीषह भी समभाव के साथ सहन करना चाहिए।

साधु के जीवन में मलपरीषह भी आता है। कभी कभी सूर्य प्रखर रूप में तपता है और उससे शरीर को कष्ट होता है। मैल और प्रस्वेद के कारण शरीर कच-पच होने लगता है और जी मिचलाने लगता है। ऐसे अवसर पर भी साधु को समभाव के सरोवर में ही अवगाहन करना चाहिए, न मैल हटाना चाहिए और न स्नान करना चाहिए।

साधु को सत्कार-पुरस्कार भी सहन करना पड़ता है, कभी-कभी साधु जीवन में योग्यता के अनुसार जनता की ओर से

सत्कार-सन्मान भी मिलता है तो कभी अपमान का कड़ुवा घूट भी पीना पड़ता है।

हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि एक साधु आता है तो उसका स्वागत करने के लिए दुनियां दौड़ी-दौड़ी जाती है। वहीं कोई दूसरा साधु आता है तो उसे कोई पूछता तक नहीं। इस भेद का एक कारण साम्प्रदायिक सकीर्णता है। आज अधिकांश लोग गुणों का नहीं, सम्प्रदाय का सत्कार करते हैं। गुण पिछड़ गए और सम्प्रदाय आगे आ गए हैं। जिसे वे अपने सम्प्रदाय का नहीं समझते, गुणवान् होने पर भी उस साधु का यथोचित सन्मान नहीं करते। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि गुणों के प्रति अनास्था उत्पन्न हो और गुणों को प्राप्त करने एवं बढ़ाने की ओर कम ध्यान हो जाय, इसी प्रकार अन्यान्य कारणों से भी कभी साधु का सन्मान होता है और कभी नहीं होता अथवा अपमान होता है, परन्तु सच्चे साधु का धर्म तो यही है कि वह सन्मान पाकर हर्ष और अपमान पाकर विषाद का अनुभव न करे।

जीवन लम्बा होता है उसमें तरह-तरह की घटनाएँ घटित होती रहती हैं, मुझे स्वयं अनेक प्रकार की घटनाओं का सामना करना पड़ा है और मैं गुरुदेव के द्वारा दिये गए ज्ञान के प्रभाव से यही सोचता हूं कि सन्मान-असन्मान दोनों कसौटियां हैं। ऐसे अवसर पर ही साधक की साधना की परीक्षा होती है; इस

परीक्षा में उत्तीर्ण होना साधक का कर्त्तव्य है। यही सोचकर मैं अपनी आत्मा को कमजोर नहीं बनाता।

भाइयो! एकबार मैं उदयपुर गया तो वहां की जनता बहुत सन्मान के साथ मुझे नगर में ले गई, मुझे बड़े साधुओं ने जल्दी आगे बुलाया था, अतएव मैं वहां अधिक न ठहर सकता था। तीन व्याख्यान करके मैंने विचार किया कि लोगों को विहार की सूचना दूंगा वे आड़े पड़ जाएँगे और विहार नहीं करने देंगे, अतएव आहार करके लोगों को सूचना दिये बिना ही रवाना हो गया। बाद में संघ के बहुत से भाई आए और बोले—आपने सूचना दिये बिना ही विहार कर दिया। महाराज, ऐसा तो किसी ने भी नहीं किया था।

अभिप्राय यही है कि साधु के लिए अपमान भी परीषह है और सन्मान भी परीषह है। अपमान प्रतिकूल और सन्मान अनुकूल परीषह है। दोनों को समान भाव से सहन करने से ही आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है।

साधु को प्रज्ञापरीषह भी सहन करना पड़ता है। जीव को ज्ञानावरण कर्म के अनुसार प्रज्ञा-बुद्धि की प्राप्ति होती है। जिसका क्षयोपशम तीव्र होता है उसकी वस्तुतत्त्व को ग्रहण करने और धारण करने की शक्ति अधिक होती है। जिसका क्षयोपशम मन्द होता है, वह बहुत परिश्रम करके भी ग्रहण या धारण नहीं

कर सकता। जब वह जल्दी ग्रहण और धारण नहीं कर सकता तो अपनी कुंठित बुद्धि के लिए दुखी होता है। सोचता है-अरे, मुझे तो कुछ भी याद नहीं होता और समझ में भी नहीं आता। अपने साथी की कुशाग्र बुद्धि के साथ अपनी तुलना करने से भी विषाद होने का प्रसंग उपस्थित होता है। परन्तु भगवान् ने फर्माया है कि साधु को इस प्रकार दुखी नहीं होना चाहिए। इस परीषह को भी समभाव रख कर सहन करना चाहिए।

इसके बाद अज्ञानपरीषह है। किसी साधु को श्रुत का गम्भीर और विस्तृत ज्ञान हो जाता है, परन्तु दूसरे साधु को वैसा नहीं होता। बार-बार परिश्रम करने पर भी उसे यथेष्ट सफलता नहीं मिलती। ऐसा होने पर भी श्रमण को विषण्ण नहीं होना चाहिए, बल्कि ज्ञानाचार का निरतिचार सेवन करके भविष्य में अधिक ज्ञानवान् बनने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

सम्यक्त्वी जीव को भगवान् तीर्थङ्कर के वचनों पर रंचमात्र भी संशय नहीं करना चाहिए तथापि कर्मोदय के कारण तथा बाह्य निमित्त मिलने से कभी संशय भी हो जाता है और उस समय सम्यक्त्व मलीन हो जाता है। एक दृष्टान्त दिया गया है-

किसी गुरु के चार शिष्य थे। उनमें से एक शिष्य का अन्तिम समय निकट आया तो उसे गुरु ने आलोचनापूर्वक संथारा करा दिया। और कह दिया-देखो, यदि तुम स्वर्ग में

आओ तो मेरे पास आकर कहना कि मैं देव हो गया हूं। शिष्य ने यथासमय देह त्याग किया और देव बन गया। परन्तु स्वर्गलोक के सुखों में वह इतना मस्त हो गया कि गुरु के पास जाना भूल गया।

थोड़े समय बाद दूसरे शिष्य का अन्तकाल आया। गुरु ने उसे भी संथारा कराया और उसी वचन में बांध दिया। मगर देवलोक में जाने के बाद वह भी ऐश-आराम में फँस गया और गुरु के पास जाना भूल गया।

इसी प्रकार तीसरे और चौथे शिष्य के अन्तिम समय में भी गुरु ने संथारा कराते समय वही कहा। उन्होंने आना स्वीकार भी किया, किन्तु दिव्य भोगोपभोगों में तल्लीन हो जाने के कारण उन्होंने भी गुरु को भुला दिया। इस प्रकार चार शिष्यों में से एक ने भी आकर गुरु से नहीं कहा कि मैं स्वर्ग में देव रूप से उत्पन्न हुआ हूं। तब गुरु की श्रद्धा भंग हो गई। सन्देह की आंधी चलने लगी। सोचा शास्त्र कहते हैं कि स्वर्ग है; मोक्ष है। परन्तु इससे तो यही विदित होता है कि यह मान्यता मिथ्या है। न स्वर्ग है, न मोक्ष है। मैंने इतने दिनों तक व्यर्थ ही जीवन नष्ट किया।

इसी तरह के विचार के कारण गुरु की भावना पुनः गृहस्थ बनने की हो गई। मन में दुविधा चल रही थी कि इन्हीं

दिनों चार में से एक शिष्य देव का ध्यान गुरु की ओर चला गया। उसने उपयोग लगाया तो मालूम हुआ कि एक भी शिष्य के वापिस न लौटने के कारण गुरुजी की श्रद्धा बदल गई है और वे ग्रहस्थ होने की तैयारी कर रहे हैं। उनका संशय दूर करना चाहिए और अपने वचन का पालन करना चाहिए।

देवता मध्य लोक में आया। उसने गुरुजी के आवागमन के मार्ग में नाटक की रचना की। गुरुजी उधर से निकले तो सोचने लगे ग्रहस्थ बनने तो जा ही रहा हूं, फिर यह नाटक क्यों न देख लूं इस प्रकार सोच कर वे नाटक देखने लगे और छह महिने पूरे हो गए। छह महिने तक नाटक देखने के बाद वे आगे बढ़े। देवता ने देखा गुरुजी लोकलाज तो गँवा ही बैठे हैं देखना चाहिए कि दिल में दया शेष रही है या नहीं ?

भाइयो ! संयम में स्थित रहने के लिए दो गुण अवश्य होने चाहिए लज्जा और दया। साधु के अन्तः करण में लज्जा होगी तो वह अकृत्य कर्मों से बचता रहेगा। और यदि दिल में दया होगी तो भी पाप कर्म का आचरण नहीं करेगा और संयम का यथावत् पालन करेगा। जिसके हृदय में यह दोनों ही गुण नहीं होते; वह संयम का पालन करने में समर्थ नहीं हो सकता। कहावत है 'नागे के आगे नौबत 'वाजे, दो धड़ाका ज्यादा बाजै।' लज्जा और दया से हीन पुरुष का अधः पतन हो जाता है। उसे

कोई टोकता है तो वह कहता है, हम से क्या कहते हो पहले अपने को तो संभालो। हम कुछ भी करें, तुम्हें क्या मतलब ?

तो देवता ने सोचा-गुरुजी के हृदय में दया होगी तो भी मामला बन जाएगा। यह सोच कर उसने अपनी विक्रियाशक्ति से नगर की रचना की। चलते-चलते गुरुजी उस नगर में पहुँचे तो वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कुछ लड़के उनके सामने आए। गुरुजी ने उन्हें एकान्त में देखा तो मन में लोभ उत्पन्न हुआ। सोचा परदेश में जा रहा हूँ तो धन की आवश्यकता होगी। यह सोच कर उन्होंने कई बच्चों के गले दबा दिये और उनके आभूषण उतार कर पात्रों में भर लिये। उनके दिल में यह विश्वास बद्धमूल हो चुका था कि स्वर्ग-नरक मोक्ष कुछ भी नहीं है। अतएव दिल में दया भी नहीं रह गई थी। छह बच्चों के आभूषण पात्र में रख कर वे आगे बढ़े तो सामने ही श्रावक-श्राविकाओं का समूह स्वागत के लिए आता दिखाई दिया। श्राविकाएँ गीत गा रही थीं और श्रावक जय-जयकार कर रहे थे। उन्हें समीप आया देखा तो गुरुजी के दिल में घबराहट होने लगी।

श्रावक-श्राविकाओं ने महाराज को वन्दन नमस्कार करके प्रार्थना की-महाराज, आज कृपा करके हमारे नगर में ही पधारें और हम सब को प्रतिबोध दें।

यह सुन गुरुजी बोले भाइयो ! आज ठहरने का अवसर नहीं है।

श्रावकों ने आग्रह किया-आप बहुत काल के बाद पधारे हैं। आज हर्गिज न जाने देंगे।

मुनी-नहीं, मुझे जाना ही होगा। मैं नहीं ठहर सकूंगा।

समस्त स्त्री-पुरुषों ने उन्हें घेर लिया। विवश होकर, अनिच्छा से उन्हें नगर में जाना पड़ा। ठिकाने पहुँच कर उन्होंने मांगलिक सुनाया और कहा-अब आप लोग जाइए। मैं अपना आवश्यक कार्य करूंगा।

लोगों ने फिर भी पिण्ड न छोड़ा। कहा-गोचरी-पानी का समय हो गया है। अब आप गोचरी के लिए पधारने की कृपा कीजिए।

यह सुनकर मुनि मन ही मन बहुत झुंझलाए, मगर लोगों का आग्रह बन्द नहीं होता था। तब वे बोले–आप लोग मुझे वृथा परेशान कर रहे हैं, मुझे किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है।

लोग बोले–नहीं गुरुदेव, ऐसा नहीं हो सकता। हम आपको भूखा नहीं रहने देंगे। कदाचित् भोजन की आवश्यकता न हो तो पानी तो ले ही लीजिए।

गुरुजी बोले–मुझे पानी की भी आवश्यकता नहीं है।

इसी झमेले के बीच किसी श्रावक ने गुरुजी के पात्र खींच लिये। पात्र खींचते ही बच्चों के गहने इधर-उधर बिखर गए।

सब लोगों ने आश्चर्य का भाव प्रकट करते हुए कहा–महाराज ! यह जेवर आपके पास कहां से आए ? यह तो इन लोगों के बच्चों के हैं जो आपका स्वागत करने गए थे।

मुनि का चेहरा एकदम काला पड़ गया, गर्दन नीची झुक गई। मुंह से एक बोल तक न निकल सका।

अपने घोर पाप का भंडा फूटा देख मुनि घोर पश्चाताप करने लगे। सोचा–अब क्या करूं ! मेरे ऊपर आकाश और नीचे धरती है। भगवान् के सिवाय और कोई भी रक्षक नहीं है।

मुनि को पश्चाताप की आग में जलते देख देव ने अपनी माया समेट ली और अपने असली रूप में प्रकट होकर कहा–'गुरुवर ! मत्थएण वंदामि।' आपने जो नाटक देखा, उसमें छह महीने लग गए या नहीं ? गुरुदेव, यह नाटक मैंने ही रचा था। आपकी चलायमान श्रद्धा को स्थिर करने के लिए यह सारा नाटक भी मैंने ही किया है, आपने मुझे पहचाना नहीं ? मैं आपके ही शिष्यों में से एक हूं। आपके चारों शिष्य आपकी कृपा से स्वर्गलोक में उत्पन्न हुए हैं। किन्तु स्वर्गीय भोगोपभोगों में गृद्ध हो जाने के कारण आपकी सेवा में नहीं आ सके। अब मैं उपस्थित हुआ हूं। आशा है अब आपका विपर्यास दूर हो जाएगा और आप पुनः संयम में दृढ़ होंगे।

इस प्रकार कह कर देवता मुनि को नमस्कार करके लौट गया।

भाइयो ! करनी निष्फल नहीं होती, जो जैसी करनी करता है, उसे वैसे ही फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार की दृढ़ श्रद्धा सम्यग्दृष्टि में होनी चाहिए संभव है, हम अपनी बुद्धि की मन्दता के कारण किसी सूक्ष्म तत्त्व को न समझ सकें. तथापि वीतराग की वाणी अन्यथा नहीं हो सकती; ऐसा पक्का निश्चय रहना चाहिए।

आज जैनधर्म के अनुयायियों में भी अनेक सम्प्रदाय हैं। कई बातों में वे परस्पर विरोधी प्ररूपणा करते हैं। उसे सुन कर हमें भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। हमें अपनी विवेकबुद्धि से सत्य तत्त्व का, निष्पक्ष भाव से, निर्णय करना चाहिए। जहां निर्णय की योग्यता न हो वहां यही समझना चाहिए—

तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं।

अर्थात्—तीर्थङ्कर भगवन्तों ने जो कुछ प्ररूपणा की है, वही सत्य है, वही असंदिग्ध है।

आखिर मनुष्य न एकदम बुद्धिशून्य है और न अनन्त बुद्धिशाली है। उसे न तो अपने को पशु के समान समझना चाहिए और न यह अहंकार करना चाहिए कि मेरी बुद्धि ही सब कुछ है। जो मेरी बुद्धि के गज से नापा जा सके वह तो ठीक है और जहां मेरी बुद्धि का प्रवेश न हो वह भी नहीं है। हमें नम्रता के साथ अपनी अल्पज्ञता को स्वीकार करना चाहिए। यह भी

मानना चाहिए कि तीर्थङ्कर भगवान् अनन्तज्ञानी थे, वीतराग थे और प्राणी मात्र के हितैषी थे। इनके द्वारा प्ररूपित मार्ग कदापि मिथ्या नहीं हो सकता।

कभी किसी विषय में सन्देह उत्पन्न हो तो उस विषय के विशेषज्ञ से पूछ कर के समाधान प्राप्त करना चाहिए। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के साधु रंगीन वस्त्र धारण करते थे। महावीर स्वामी के जिनकल्पी साधु नग्न रहते थे और स्थविरकल्पी श्वेत वस्त्र धारण करते थे। पार्श्वनाथ की परम्परा में महाव्रतों की संख्या चार थी, महावीर की परम्परा में पांच महाव्रत थे। यह विरोधाभास देख कर कई साधुओं के चित्त में यह तर्क-वितर्क उत्पन्न हुआ कि—जब दोनों परम्पराओं का लक्ष्य एक ही है तो इस अन्तर का क्या कारण है? साधुओं के इस तर्क-वितर्क का शमन करने के लिए केशी स्वामी और गौतम स्वामी एक स्थान पर मिले। दोनों में संवाद हुआ और दोनों परम्पराओं में समन्वय हो गया। सब साधु समझ गए कि कालभेद से और शिष्यों की योग्यता के भेद से प्ररूपणा के बाह्य रूप में अन्तर भले दीख पड़े, मगर दोनों में वास्तविक अन्तर कुछ भी नहीं है।

तो अभिप्राय यह है कि जो बात अपनी समझ में न आवे, उसे तीर्थङ्करों के वचनों पर छोड़ देना चाहिए और अपने सम्यक्त्व को निर्मल रखना चाहिए। जो साधु इस प्रकार

बाईस परीषहों को दृढ़तापूर्वक सहन करते हैं, वे इहलोक और परलोक में सुखी होते हैं।

श्रीपाल चरित–

भाइयो ! श्रीपाल के कथानक के रूप में भी यही बात आपके समक्ष उपस्थित की जा रही है। कल बतलाया गया था कि श्रीपाल जब उद्यान में शयन कर रहे थे तो धवल सेठ के आदमी बलि चढ़ाने के उद्देश्य से उन्हें पकड़ ले गए। मगर जब श्रीपाल ने अपना क्षात्र तेज प्रकट किया और तलवार के हाथ दिखलाए तो उनकी बुद्धि ठिकाने आई। धवल सेठ भी विनम्र बन गया। तब श्रीपालजी ने अपने प्राण लेने को उद्यत हुए धवल सेठ पर द्वेष न करके दया प्रदर्शित की। दूसरा कोई होता तो अपने प्राणलेवा को भयानक शत्रु समझता और उसके प्राण लेकर ही बदला चुकाता। ऐसा न कर पाता तो मन में द्वेषभाव अवश्य धारण करता। परन्तु श्रीपालजी महानुभाव थे, जिनवचनों के अनुरागी थे और क्षमावान् थे। अतएव उन्होंने धवल सेठ पर भी अनुकम्पा करके कहा—आखिर तुम अपने जहाज ही तो चलाना चाहते हो। मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारी सहायता करता हूँ।

श्रीपाल की यह उदारता देखकर धवल सेठ पानी-पानी हो गया। मन ही मन इस देवता स्वरूप वीर पुरुष को प्रणाम करता हुआ कहने लगा–जी हां, मुझे यही चाहिए।

आखिर श्रीपाल जहाजों के समीप पहुंचे। नवपद का ध्यान किया और जहाज में जो पदाघात किया कि तत्काल जहाज चल पड़ा।

यह देख सेठ ने श्रीपाल से कहा-मैं आपको अपने साथ रखना चाहता हूं। आप एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ लेना स्वीकार करें और मेरे साथ चलें। आपको मैं अपने मित्र के समान आदर के साथ रक्खूंगा।

श्रीपाल ने उत्तर दिया-सेठ, मैं आपके साथ चल सकता हूँ, मगर एक वर्ष आपके साथ रहूँगा और एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ लूँगा।

धवल सेठ ने कहा-भाई, आपके शौर्य, औदार्य और प्रभाव को देखते हुए करोड़ मुद्राएँ चाहे अधिक न हों, तथापि इतना देना मेरी शक्ति से बाहर है। मैं वणिक् हूं, इतना नहीं दे सकता।

तब श्रीपालजी बोले-जाने दीजिए। मुझे आपकी स्वर्ण-मुद्राओं की आवश्यकता नहीं है। आप मुझ से सौ मुद्राएँ लीजिए और अपने साथ, अपने जहाज पर लेते चलिए। जिस ओर आप जा रहे हैं, मुझे भी उसी ओर जाना है। क्या आप ले चल सकते हैं?

सेठ ने मन ही मन सोचा-यह सौदा तो अतीव उत्तम है,

मेरी हजार मुद्राएँ बच गईं और उलटी सौ मुद्राएँ आ रही हैं। फिर इसकी सहायता तो प्राप्त रहेगी ही।

यह सोचकर सेठ ने श्रीपालजी के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। कहा—आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे साथ चल सकते हैं। पांच सौ यानों में एक व्यक्ति क्या भारी हो सकता है।

श्रीपाल सौ मुद्राएँ देकर जहाज पर सवार हो गए, जहाज अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़े।

कुछ दिन चलने के पश्चात् एक दिन नियमिक ने कहा-सेठजी, बन्दरगाह निकट आ गया है। यहां पानी मीठा है। अतएव यहीं जहाज ठहराना उचित होगा।

सेठ—ठीक है, यहीं ठहरा दो। यहां वस्तुओं का विनिमय क्रय-विक्रय भी कर लेंगे।

सेठजी की अनुमति पाकर बब्बर देश के किनारे सब जहाज ठहरा दिये गए।

दूसरे सब लोग जहाज से उतर कर किनारे पर चले गए, मगर श्रीपालजी जहाज पर ही रहे। मगर धवल सेठ अपने आदमियों के साथ जब आगे बढ़ा तो शुल्कपाल ने उसे रोक कर कहा—सेठजी, आपके साथ पांच सौ जहाज हैं और वे माल से भरे हैं। इनका शुल्क चुका कर आगे बढ़िए।

धवल सेठ के साथ पर्याप्त सैनिक थे, इसे अपने दल का अभिमान था। अतएव उसने शुल्क चुकाने से इन्कार कर दिया। सेठ के इन्कार करने पर शुल्कपाल ने अपना जोर तो बहुत लगाया, परन्तु इनके सामने उसकी चली नहीं। आखिर वह राजा के पास पहुँचा और बोला—महाराजाधिराज! धवल नामक एक सेठ पांच सौ जहाज माल से भर कर लाया है, परन्तु वह चुंगी चुकाने से इन्कार करता है। उसके साथ दस हजार सुभट हैं जो मरने-मारने को तैयार हैं, आपकी सेवा में निवेदन करना मेरा कर्त्तव्य है। आगे हुजूर जो योग्य समझें सो करें।

राजा ने कहा—सेठ को शुल्क देना ही पड़ेगा, राजकीय नियम का पालन करना किसी की इच्छा पर निर्भर नहीं है। वह अनिवार्य है।

इसके पश्चात् राजा ने अपने अधिकारियों को बुलाकर कहा—धवल सेठ और उसके आदमियों को पकड़ कर मेरे समक्ष उपस्थित करो।

राजा का आदेश होते ही सैनिकों को साथ लेकर राज्याधिकारी धवल सेठ के पास पहुँचे और उसे घेर लिया। धक्का-धक्की में सब लोग तो इधर-उधर भाग निकले, पर धवल सेठ पकड़ा गया। उसे रस्सी से बांध दिया गया।

कोलाहल सुनकर श्रीपालजी भी वहां आ पहुँचे। देखा कि

धवल सेठ वृक्ष से बँधा खड़ा है। राजा के सैनिकों ने जहाजों में से माल लूट लिया है। यह हालत देखकर श्रीपालजी बोले—सेठजी ! आपके सुभट कहां गए जिनके बल पर गर्जना कर रहे थे ?

धवल सेठ के चेहरे पर लज्जा और दीनता दिखाई दे रही थी। उसने श्रीपाल से कहा—भाई, क्यों जले पर नमक छिड़क रहे हो ? मैं बँधा हुआ हूं और लुट गया हूँ। आप मरे हुए को मार रहे हैं ! अगर आप परोपकारी हैं तो मेरा उपकार करो और मुझे छुड़ाओ।

श्रीपाल बोले-पहले आपने नीति का उल्लघन किया है। आपको राजकीय शुल्क चुकाना चाहिए था। यही नीति और धर्म की मर्यादा है, उसका उल्लंघन करने का ही यह परिणाम है।

धवल—अवश्य मुझसे भूल हुई है, तथापि राजा का कर्त्तव्य क्या इस प्रकार लूट मचाना है ? अगर आप मेरा सब माल दिलवा दें तो मैं आधे जहाज आपको दूंगा।

श्रीपाल—अभी ऐसा कह रहे हो। माल वापिस मिलने पर बदल जाओगे।

धवल—कदापि नहीं महानुभाव ! धवल सेठ का यह वचन कदापि मिथ्या नहीं होगा।

श्रीपाल-ठीक है; मैं अपने कर्त्तव्य का पालन करता हूँ और चाहता हूँ कि तुम और राजा भी अपने २ कर्त्तव्य का पालन करें।

इसके पश्चात् श्रीपाल नगर में गए। वहां के राजा का नाम महाकाल था। महाकाल के समीप जाकर श्रीपाल ने कहा—महाराज, शुल्क न देना धवल सेठ का अन्याय था, किन्तु उसके समस्त माल को लूट लेना भी न्याययुक्त नहीं है। अतएव मेरा निवेदन है कि धवल सेठ का माल लौटा दिया जाय।

महाकाल ने कुपित होकर कहा—धवल सेठ को उसकी उद्दंडता का दण्ड दिया गया है। उसका माल लौटाया नहीं जा सकता। उसे अपने सैनिकों का इतना घमण्ड था कि राजकीय मर्यादा को उसने तुच्छ समझा।

श्रीपाल-मगर आपने भी तो नीतिमर्यादा को तुच्छ समझा है और इसी कारण उसका उल्लंघन किया है।

महाकाल-नादान नवयुवक! तू नीति अनीति को नहीं समझता। मुझे तुझसे नीति की शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है। जा, अपना काम कर।

श्रीपाल-नीति की शिक्षा न लेना चाहें तो न लें यह आपकी मर्जी परन्तु धवल सेठ का माल तो लौटा दें। वह तो लौटाना ही पड़ेगा।

महाकाल-छोटे मुँह बड़ी बात! क्या मेरा काल तुझे पुकार रहा है?

श्रीपाल–अगर आपमें इतना सामर्थ्य है तो आ जाइए मेरे सामने !

भाइयो ! किसी से लड़ाई करनी होती है तो उसके सामने टेढ़ा बोलना पड़ता है, किसी ने कहा है–

करजे लड़ाई तो बोलजे आडो,
करजे खेती तो राखजे गाड़ो।
राखजे भैंस तो बांधजे वाड़ो।।

जब श्रीपाल ने महाकाल को युद्ध के लिए ललकारा तो महाकाल ने क्रुध होकर अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इस छोकरे को अपनी करनी का मजा चखा दो।

आज्ञा पाते ही सैनिक सामने आए और युद्ध करने लगे। मगर पूर्वार्जित विद्या के प्रभाव से श्रीपाल के शरीर पर कोई घाव नहीं लगा। उलटे, श्रीपाल के द्वारा छोड़े हुए बाणों से घायल होकर महाकाल के सैनिक इधर-उधर भाग गए। तत्पश्चात् उन्होंने राजा को भी तीर से बींध कर घायल कर दिया। फिर उसे पकड़ कर सेठ के पास ले गए और कहने लगे–सेठ ! लो, मैं राजा को ही तुम्हारे पास ले आया हूं।

राजा को बंदी के रूप में देखा तो धवल सेठ की निगरानी करने वाले पहरेदार नौ दो ग्यारह हो गए। सेठ के बन्धन खोल दिये गए। बन्धनमुक्त होकर सेठ जोश में आकर तलवार लेकर

हो जाता है, उन्हें यदि खिला-पिला दिया जाय तो रंजिश कम हो जाती है।

परिस्थिति पलटी देख कर धवल सेठ के जो सैनिक भाग छूटे थे, वे वापिस लौट आए और अपनी भूल के लिए क्षमा-याचना करने लगे। मगर धवल सेठ ने कहा—जो जा चुके हैं वे जा चुके हैं। ऐसे नमकहराम लोगों के लिए मेरे यहां कोई स्थान नहीं है।

उसी समय श्रीपाल ने उनसे कहा—इस परदेश में तुम लोग निराधार कहां भटकोगे ? कैसे अपने स्थान पर पहुंचोगे ? अतएव मैं अपने अढ़ाई सौ जहाजों पर तुम्हें रख लेता हूँ। मगर याद रखना, प्रामाणिकता और सचाई के साथ काम करना होगा।

इस प्रकार धवल सेठ के सैनिकों को निराशा के गहरे गड्ढे में से निकाल कर श्रीपालजी ने अपने पास रख लिया। तत्पश्चात् राजा महाकाल को यथोचित शुल्क दिया और माल उनसे वापिस ले लिया। फिर धूमधाम से राजा को राजोचित सत्कार के साथ नगर में पहुँचाने की तैयारी की। उस समय राजा बोला-महाशय ! आपकी नीतिनिष्ठा, सदाशयता, महानुभावता और असाधारण शक्ति देख कर मेरा चित्त अत्यन्त प्रमुदित है। मैं अकेला नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। आपको साथ चलना पड़ेगा और मेरा आतिथ्य ग्रहण करना होगा।

श्रीपाल बोला–महाराज! आप की सद्भावना और कृपा के लिए आभारी हूं, किन्तु आप न मेरे वंश को और न मुझ को जानते हैं। मैं आपके लिए अजनबी हूँ। अजनबी आदमी को कन्या दे देना क्या आप जैसे से लिए उचित है?

राजा ने उत्तर दिया–कुमार! मनुष्य का शील-स्वभाव ही उसके वंश का परिचय दे देता है। वंश के संस्कार मानव के जीवन व्यवहार में पल-पल में प्रकट होते रहते हैं। हमने आपके शील को देखा, सौजन्य को देखा, पराक्रम को भी देखा और औदार्य को भी देखा है। इन सब उत्तम गुणों को देख लेने के बाद कुल एवं वंश को जानने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

श्रीपाल–मुझे जो कहना चाहिए था, कह चुका हूँ। इससे आगे आप को विचार करना है।

इतना कह कर श्रीपालजी ने अपना सिर नीचा कर लिया राजा ने समझ लिया की श्रीपाल को मेरा प्रस्ताव स्वीकार है। फिर भी राजा ने कहा–'शुभस्य शीघ्रम्' इस उक्ति के अनुसार मैं शीघ्र ही इस मंगल-कार्य को सम्पन्न कर लेना चाहता हूँ।

श्रीपाल ने सिर्फ इतना कहा–जैसी आपकी इच्छा।

इसके बाद धूम धाम के साथ राजकुमारी का श्रीपाल ने पाणिग्रहण किया। पाणिग्रहण के पश्चात् वह कुछ दिनों तक राजा के अतिथि होकर रहे। उसके बाद एक दिन उन्होंने कहा–

श्रीपाल बोला—महाराज ! आप की सद्भावना और कृपा के लिए आभारी हूं, किन्तु आप न मेरे वंश को और न मुझ को जानते हैं। मैं आपके लिए अजनबी हूँ। अजनबी आदमी को कन्या दे देना क्या आप जैसे से लिए उचित है ?

राजा ने उत्तर दिया—कुमार ! मनुष्य का शील-स्वभाव ही उसके वंश का परिचय दे देता है। वंश के संस्कार मानव के जीवन व्यवहार में पल-पल में प्रकट होते रहते हैं। हमने आपके शील को देखा, सौजन्य को देखा, पराक्रम को भी देखा और औदार्य को भी देखा है। इन सब उत्तम गुणों को देख लेने के बाद कुल एवं वंश को जानने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

श्रीपाल—मुझे जो कहना चाहिए था, कह चुका हूँ। इससे आगे आप को विचार करना है।

इतना कह कर श्रीपालजी ने अपना सिर नीचा कर लिया राजा ने समझ लिया की श्रीपाल को मेरा प्रस्ताव स्वीकार है। फिर भी राजा ने कहा—'शुभस्य शीघ्रम्' इस उक्ति के अनुसार मैं शीघ्र ही इस मंगल-कार्य को सम्पन्न कर लेना चाहता हूँ।

श्रीपाल ने सिर्फ इतना कहा—जैसी आपकी इच्छा।

इसके बाद धूम धाम के साथ राजकुमारी का श्रीपाल ने पाणिग्रहण किया। पाणिग्रहण के पश्चात् वह कुछ दिनों तक राजा के अतिथि होकर रहे। उसके बाद एक दिन उन्होंने कहा—

पिताजी ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं इतने काल तक यहां टिका रहा। आपको विदित ही है कि सेठ ठहरने को तैयार नहीं था, फिर भी मैंने उसे ठहरा लिया था। किन्तु अब जाने की अनुमति दीजिए।

राजा ने यह सोच कर कि पाहुना तो आखिर अपने घर जाएगा। श्रीपाल को जाने की अनुमति देदी। राजकुमारी को भी साथ भेजने की तैयारियां होने लगी। राजाने दहेज में एक जल-यान भी दिया जो सात मंजिल का था और जिस में सब प्रकार की सुविधाएँ थी। इस प्रकार राज कुमारी को साथ लेकर श्रीपाल जी वहां से रवाना हुए। माता पिता ने कन्या को हित-सीख दी और राजपरिवार के लोग तथा अन्य प्रधान नागरिक जन समुद्र तक उन्हें पहुँचाने गए।

श्रीपाल और धवल सेठ के जहाजों ने शुभ मुहूर्त में प्रस्थान किया। सभी जहाज सकुशल आगे बढ़ने लगे। धवल सेठ श्रीपाल के भाग्योदय का विचार करके चकित और विस्मित होने लगा। वह सोचता था श्रीपाल जब मेरे पास आया तो खाली हाथ था। फूटी कौड़ी भी उसके पास नहीं थी। मगर इतने अल्प काल में ही वह क्या से क्या हो गया ? मेरे अढ़ाई सौ जहाजों का स्वामी हो गया, सत मंजिला जहाज पा गया, पत्नी के रूप में राजकुमारी प्राप्त कर चुका और उत्तम प्रतिष्ठा का पात्र बन गया।

वास्तव में यह पुरुष बड़ा ही भाग्यशाली है। पूर्व जन्म में इसने महान् पुण्य उपार्जित किया है मगर पिछले दिनों का जहाज का किराया मेरा अब भी बाकी है। आज किराया मांगू भी तो कैसे मांगू ?

धवल सेठ आखिर वणिक् था और उसके दृष्टि कोण में अर्थ की प्रधानता थी। वह इतनी बड़ी घटनाओं के बाद तुच्छ किराये की बात को न भूल सका और न उसकी उपेक्षा कर सका। एक अवसर पर उसने किसी दूसरे के सामने भी किराये की चर्चा की और वह बात श्रीपाल के कानों तक जा पहुँची। तत्काल उन्होंने दस गुना किराया उसे चुका दिया।

यथा समय सब जहाज रत्न द्वीप पहुँच कर रूके और सब लोग नीचे उतरे। राज्य के नियमानुसार शुल्क चुकाया गया तट पर तम्बू तनवा कर श्रीपाल हिंडोले में झूलने लगे। धवल सेठ अपना माल बेचने की चिन्ता करने लगा।

आगे क्या होता है, यह बात आगे सुनने से विदित होगी।

केन्टोनमेंट बैंगलोर
११-१०-५६

ओली तप

[५]

भाइयो !

श्रीमत् समवायांगसूत्र के बाईसवें समवाय का वर्णन चालू है। उसमें से बाईस परीषहों का वर्णन किया जा चुका है। आगे शास्त्रकार फर्माते हैं कि बारहवां अंग जो दृष्टिवाद है और जो अत्यन्त विशाल होने के कारण विच्छिन्न हो चुका है, उसके मूल पांच विभाग हैं–(१) परिकर्म (२) सूत्र (३) पूर्वगत (४) प्रथमानुयोग और (५) चूलिका। इनमें दूसरा विभाग सूत्र है। जो सर्व द्रव्यों और पर्यायों की सूचना करता है, वह सूत्र कहलाता है। इस सूत्रविभाग में बाईस सूत्र छिन्नच्छेदनयक हैं और बाईस सूत्र अछिन्नच्छेदनयक हैं। जो सूत्र पूर्वापर की अपेक्षा नहीं रखता और अपने आपमें पूरा अर्थ प्रकट कर देता है, वह छिन्नच्छेदनयक कहलाता है। जैसे 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ" इत्यादि सूत्र आगे-पीछे के सूत्रों की अपेक्षा नहीं रखता है। इससे विपरीत जो सूत्र हैं और जो अर्थप्रकाशन में पूर्वापर सूत्रों की अपेक्षा

रखते हैं, वे अछिन्नछेदनयक कहलाते हैं। यह सूत्र जिनमत-आश्रित हैं।

आजीविक मत की परिपाटी के भी बाईस सूत्र हैं। बाईस सूत्र त्रिकनयवंत हैं। अर्थात् तीन राशियों का अनुसरण करते हैं, जैसे जीवराशि, अजीवराशि और जीवाजीवराशि, लोक, अलोक और लोकालोक, इत्यादि।

बाईस सूत्र चार नयों वाले हैं, यथा-नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र। यह सूत्र स्वसमय अर्थात् जिनमत की परिपाटी के अनुसार पढ़े जाते हैं।

भाइयो! एक दिन मैंने सुनाया था कि-

> नौ सौ कागज लावजो, भूपति आज्ञा दीन।
> 'खूब' कहे इक पाद के, अर्थ होत हैं तीन॥

यहां नौ सौ कागज लावजो' यह प्रथम पाद है। इसके अक्षरों का इधर-उधर करने से तीन अर्थ निकलते हैं, यथा-

१- नौ सौ कागज लावजो-अर्थात् नव सौ कागज लाना।

२- नौ सौ का गज लावजो-अर्थात् नौ सौ रुपयों की कीमत का हाथी लाना।

३- नौ सौ काग जलावजो-अर्थात् नौ सौ कौवों को जला देना-भस्म कर देना।

इस प्रकार विभिन्न नयों–दृष्टिकोणों से एक ही सूत्र विभिन्न अर्थ प्रकट करने लगता है। जिसकी जैसी दृष्टि होती है, उसे वैसा ही अर्थ प्रतिभासित होने लगता है। इसी कारण शास्त्र में कहा है कि सम्यग्दृष्टि के लिए मिथ्या श्रुत भी सम्यक्श्रुत के रूप में परिणत हो जाता है और इसके विपरीत मिथ्यादृष्टि सम्यक् श्रुत को भी मिथ्या रूप में परिणत कर लेता है। यह बात समझने वाले के सही या गलत दृष्टिबिन्दु पर निर्भर है। अतएव हम जब कभी किसी शास्त्र को पढ़ें तो इस बात का अवश्य ध्यान रक्खें कि किस नय की अपेक्षा कौन-सी बात कही गई है। नयविवक्षा को समझने में भूल करने वाला पाठक भ्रम में पड़ जाता है और कभी-कभी तत्त्वस्वरूप को विपरीत समझ लेता है।

आगे बतलाया गया है कि पुद्गलों का परिणमन बाईस प्रकार का होता है। पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, अगुरुलघु और गुरुलघु परिणाम के भेद से परिणाम के बाईस भेद हैं।

इस विशाल विश्व में जो-जो पदार्थ हमारी इन्द्रियों के गोचर होते हैं, वे सब पुद्गल द्रव्य के अन्तर्गत हैं। दिखाई देने वाले यह सभी पदार्थ एक मात्र पुद्गल द्रव्य की ही विभिन्न परिणतियां हैं. क्योंकि शेष पांच द्रव्य अमूर्त्तिक होने के कारण इन्द्रियगोचर नहीं होते। अतएव विस्तार की अपेक्षा तो पुद्गलों

के परिणमन अनन्तानन्त हैं, किन्तु संक्षेप की विवक्षा से उन सब का बाईस भेदों में ही समावेश हो जाता है।

वर्ण, रस; गंध और स्पर्श में सजातीय परिणमन होता है, विजातीय परिणमन नहीं होता। अर्थात् कोई भी एक वर्ण किसी भी दूसरे वर्ण में परिणत हो जाता है, परन्तु रस, गंध या स्पर्श नहीं बन सकता। यही बात रस, गंध और स्पर्श के रूप में समझना चाहिए। खट्टा पदार्थ मीठा और मीठा खट्टा हो जाता है, जैसे दूध दही बन जाता है। खट्टा, मीठा बन जाता है। सुगंधित पदार्थ दुर्गन्धित और दुर्गन्धित सुगंधित रूप में परिणत हो जाता है। कभी गुरुलघु द्रव्य अगुरुलघु बन जाता है और कभी अगुरुलघु का गुरुलघु के रूप में परिणमन हो जाता है। इस प्रकार परिणमन के स्वरूप को समझ कर विवेकवान् पुरुष को राग-द्वेष का त्याग करके मनोज्ञ-अमनोज्ञ रस आदि के विषय में समभाव धारण करना चाहिए।

आगे बतलाया गया है कि प्रथम नरक में कोई-कोई नारक जीव बाईस पल्योपम की स्थिति वाले हैं। छठे नरक में उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की है। सातवें नरक में बाईस सागरोपम की जघन्य स्थिति है।

असुरकुमार निकाय के देवों में कोई-कोई देव बाईस पल्योपम की स्थिति वाले हैं। बारहवें देवलोक में उत्कृष्ट बाईस

सागरोपम की स्थिति है। पहले ग्रैवेयक विमान के देवों की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम की है। बारहवें देवलोक में महित विश्रुत, विमल प्रभास, वनमाल एवं अच्युतावतंसक नामक विमानों में उत्पन्न होने वाले देवों की स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। इन विमानों में उत्पन्न होने वाले देवों को बाईस हजार वर्ष बीतने पर भूख लगती है, वे बाईस पक्षों में श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

इस संसार में कोई-कोई भव्य जीव ऐसे भी हैं जो बाईस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे और समस्त कर्मों का अन्त करके परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे।

तेईसवें समवाय में सर्वप्रथम बतलाया गया है कि दूसरे सूत्रकृत नामक अंग के दोनों श्रुतस्कंधों के मिला कर तेईस अध्ययन हैं। वह इस प्रकार हैं—

(१) स्वसमय-परसमय अध्ययन—इसमें स्वसिद्धान्त एवं परसिद्धान्त का निरूपण किया गया है। अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् की मान्यता क्या है और दूसरे मतों की मान्यता क्या है, इस बात का विवेचन किया है। उदाहरणार्थ—कोई जगत् को ईश्वरकृत कहते हैं, कोई ब्रह्मकृत कहते हैं, किसी-किसी का कहना है कि यह विशाल सृष्टि अण्डे में से पैदा हो गई है। इन मतों का दिग्दर्शन कराते हुए निरास किया गया है।

(२) वैतालिक अध्ययन है। इसमें कर्मों को तोड़ने का उपाय बतलाया गया है। भगवान् ऋषभदेव ने अपने ९८ पुत्रों को वास्तविक कल्याण का जो मार्ग बतलाया था, उसका इसमें सार दिया गया है।

भाइयो! दीक्षा लेने से पहले ऋषभदेवजी ने अपने सब पुत्रों में राज्य वितरण कर दिया था, परन्तु भरतजी ने छहों खंडों को जीत कर एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया। दिग्विजय करने के बाद भी चक्ररत्न ने अपने ठिकाने प्रवेश नहीं किया, क्योंकि अभी तक भाइयों पर अधिकार नहीं हुआ था। भरतजी ने दूत भेजकर आज्ञानुवर्त्ती होने के लिए कहलाया। यह भी कहलाया कि आज्ञा न मानने की स्थिति में युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। इस प्रकार के समाचार पाकर वे भगवान् ऋषभदेव पै पहुँचे। भरतजी की शिकायत की कि आपके दिये हुए राज्य को बड़े भैया भरत छीनना चाहते हैं। तब भगवान् ने उन सबको उपदेश देते हुए कहा—देखो, सबसे बड़ा राज्य तो मोक्ष का है। उसीको प्राप्त करने का प्रयत्न करो। समझो, बूझो और आत्मिक बन्धनों को तोडने की कोशिश करो।

इस प्रकार का उपदेश सुनने से उन्हें वैराग्य हो गया और वे सब साधु हो गए।

(३) उपसर्गपरिज्ञा नामक अध्ययन में बताया गया है कि

कर्मबन्धनों को नष्ट करने के लिए उद्यत साधक के सामने अनेक प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल परीषह आते हैं। उनके आने पर साधु को समभाव में स्थिर रहना चाहिए।

(४) स्त्रीपरिज्ञा नामक अध्ययन में स्त्रियों की ओर से होने वाले उपसर्गों का वर्णन किया गया है। कहा है-हे साधु! तू स्त्री के संसर्ग से सदैव बचना और कभी उसके चक्कर में मत आना, एक बार स्त्री के प्रलोभन में आने के पश्चात् साधक अपनी साधना से भ्रष्ट हो जाता है और उसकी बहुत बड़ी दुर्दशा होती है। वह कर्मों का बन्धन करता है, नरक में जाता है और घोर वेदनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। उसका वर्त्तमान जीवन भी दुःखमय हो जाता है। स्त्री का दास बनकर उसे सैकड़ों मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।

(५) पांचवां अध्ययन नरकविभक्ति है, जिसमें नरक में होने वाले क्षेत्रजनित, परमाधार्मिकजनित एवं परस्परजनित भीषण कष्टों का दिग्दर्शन कराया गया है नारकीय वेदनाओं का लोमहर्षक चित्रण किया गया है।

(६) छठा अध्ययन वीरस्तुति है इसमें ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर के लोकोत्तर गुणों का परिचय कराते हुए उनकी स्तुति की गई है।

(७) सातवें कुशीलपरिभाषा अध्ययन में बतलाया गया

है कि अगर कोई साधक प्रव्रजित होने पर भी आचार का बराबर पालन नहीं करता तो कुशीलिया कहलाता है और जो साधु का वेष धारण करके शास्त्रोक्त 'शील का आचरण करता है; वह शीलवान् कहलाता है।'

(८) आठवां वीर्याध्ययन है। वीर्य का अर्थ है पराक्रम। वीर्य तीन प्रकार का है—पण्डित वीर्य, बाल वीर्य, और बाल पण्डित वीर्य। ज्ञानी पुरुष का वीर्य पराक्रम पण्डित वीर्य कहलाता है, अज्ञानी के पराक्रम को बाल वीर्य कहते हैं और श्रावक जो देश विरति आदि का सेवन करता है; वह बालपण्डित वीर्य कहलाता है। इन में पण्डित वीर्य ही आत्मा के लिए कल्याणकारी होता। अतएव इस आत्मा को ऐसा पराक्रम करना चाहिए जिससे कर्मों का नाश हो सके। मनुष्य जीवन पाकर कोई लाखों करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित कर लें, देव भवन के समान सुन्दर महल बनवालें, सब कुछ सांसारिक विभूति प्राप्त कर लें, किन्तु जब तक 'ठेठ' का काम नहीं करता, तब तक उस का सब कुछ करना न करने के ही समान है। कहा है—

ठेठ का काम तो भूल गया अरु पेट के काज भटकता है,
हराम का काम तो बहुत किया साहिब का नाम अटकता है।
कर कूड कपट झपट लालच के बीच लपटता है,
कहे दीन दरवेश अकड़े मत पटक के काल पटकता है।

आज जगत् के अधिकांश मनुष्य क्या कर रहे हैं? जो आखिरी कार्य है–जिसे करने पर कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता, उसे तो भूले हुए हैं और पेट के लिए भटक रहे हैं। तृष्णा का खड्डा कभी भरता नहीं, अतएव उसके लिए दुनिया भर के धन्धे करने पड़ते हैं।

भाइयो! अत्यन्त तीव्र पुण्य के योग से मिले हुए मन, वचन और काय का जितना प्रयोग निस्सार, क्षणिक एवं तुच्छ पदार्थों के लिए तथा पापकार्य के लिए किया जाता है, उतना क्या उसका शतांश भी भगवान् के भजन के लिए, धर्मकार्य के लिए और आत्मोत्थान के लिए नहीं होता है। यह जीव झूठ और दगाबाजी करके संसार को बढ़ा रहा है, ऐसी स्थिति में दीन दरवेश कह रहे हैं–ऐ मानव! तू अभिमान मत कर। देख, रावण जैसा अभिमानी और प्रचण्ड शक्तिशाली भी इस भूतल से चला गया तो तेरी क्या बिसात है? तेरे पास न तो रावण जितना सोना है, न शक्ति है न बल ही है। अतएव जो भी शक्ति और साधन तेरे पास हैं, उसके लिए अभिमान मत कर।

(६) धर्माध्ययन–ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि जब मनुष्य को विवेक की प्राप्ति हो जाती है, तब अभिमान स्वतः गल जाता है, वह समझने लगता है कि यह आत्मा अनादि काल से पापों की ओर प्रवृत्त हो रही है, धर्मकार्य की ओर नहीं लगती। ऐसा

समझकर वह धर्मकार्य में पराक्रम करने लगता है। इस प्रकार नौवें अध्ययन में धर्म का निरूपण किया गया है।

(१०) समाधि अध्ययन है। इसमें बतलाया गया है कि इस आत्मा को किस प्रकार समाधि की प्राप्ति हो सकती है?

(११) ग्यारहवें मोक्षमार्ग अध्ययन में मोक्ष का मार्ग बतलाया गया है और निरूपण किया गया है कि मनुष्य इस मार्ग पर चलेगा तो ऊर्ध्वगामी बनकर मोक्ष प्राप्त कर लेगा।

(१२) समवसरण अध्ययन में क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद और विनयवाद आदि पाखण्ड मतों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

(१३) याथातथ्य अध्ययन में याथातथ्य-वस्तुतत्व के यथार्थ स्वरूप का वर्णन है।

(१४) ग्रन्थ अध्ययन में ग्रन्थ (गांठ-परिग्रह) का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है। और उसके त्याग की प्रेरणा की गई है।

(१५) आदानीय अध्ययन में नाना प्रकार की सुन्दर शिक्षाएँ हैं, संयम का उपदेश है।

(१६) गाथा अध्ययन है। इसमें सच्चे श्रमण माहण भिक्षु एवं निर्ग्रंथ का स्वरूप प्ररूपित किया गया है।

(१७) पुण्डरीक अध्ययन में पुण्डरीक (श्वेत कमल) का सुन्दर रूपक है। कहा है—जैसे एक लम्बे-चौड़े जलाशय में बहुत

से कमल हैं और उनमें एक पुण्डरीक कमल भी है। उस कमल को प्राप्त करने के लिए एक पुरुष उत्तर दिशा से आया। वह उसको लेने के लिए चला कि बीच में ही कीचड़ में फँस गया। कमल उसके हाथ नहीं आया। दूसरा व्यक्ति दक्षिण दिशा से आया और वह भी कीचड़ में फँस गया। तीसरा आदमी पश्चिम दिशा से आकर प्रविष्ट हुआ और उसकी भी वही दशा हुई। चौथा पुरुष पूर्व दिशा से आया और उसने भी पुण्डरीक कमल को ग्रहण करना चाहा। उसने सोचा-ये तीनों मूर्ख थे, अतएव कीचड़ में फँस गए। मैं इसे अवश्य ही ले लूँगा। ऐसा सोच कर वह पानी में गया, किन्तु उसे भी कीचड़ में फँसना पड़ा। तत्पश्चात् पांचवें पुरुष का आगमन हुआ। उसने कहा-कमल प्राप्त करना है तो वह कीचड़ में फँसने से नहीं मिलेगा। किनारे पर रह कर ही उसे प्राप्त किया जा सकता है।

इस रूपक का उपनय यह है कि मोक्ष कमल के समान है और यह संसार कीचड़ के समान है। इसमें नाना प्रकार के मत और पंथ हैं। वे संसार में रह कर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। ज्ञानी पुरुष कहते हैं—इस प्रकार तुम मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते मोक्ष-कमल प्राप्त करना है तो तुम्हें कीचड़ में फँसने से बचना होगा। इत्यादि वर्णन है।

(१८) क्रियास्थान नामक अध्ययन में सावद्य क्रियाओं का वर्णन किया गया है। तेरह क्रियास्थानों का दिग्दर्शन है।

(१६) आहारपरिज्ञा नामक अध्ययन का विषय नाम से ही स्पष्ट है।

(२०) प्रत्याख्यानपरिज्ञा में प्रत्याख्यान का विवरण है।

(२१) अनगार श्रुत नामक अध्ययन में अतीव उपयोगी विषयों का प्रतिपादन है।

(२२) आर्द्रकुमार के अध्ययन में राजकुमार आर्द्र का वर्णन है।

श्रेणिक महाराज के पुत्र अभयकुमार ने उनके पास मुखवस्त्रिका वगैरह भेजी। उन्हें देख कर उसे जातिस्मरण हो गया, क्योंकि पूर्वजन्म में वह संयम पाल कर आया था। वह भगवान् की सेवा में उपस्थित होने के लिए चले तो रास्ते में उन्हें अन्य-मतावलम्बी साधु मिले। उन्होंने आर्द्रकुमार को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया। उनके साथ वादविवाद करके और उन्हें पराजित करके वे भगवान् महावीर के निकट पहुँचे। इत्यादि वर्णन है।

(२३) तेईसवां नालंदीय अध्ययन है और यही सूत्रकृतांग सूत्र का अन्तिम अध्ययन है और अनेक ज्ञातव्य विषयों से परिपूर्ण है।

जो भव्य प्राणी तीर्थङ्कर भगवान् की वाणी को श्रद्धापूर्वक पढ़ेंगे तथा सुनेंगे, वे संसार-सागर से पार होकर अक्षय एवं अनन्त सुख को प्राप्त करेंगे।

श्रीपाल चरित—

अब यही विषय श्रीपाल चरित्र के आधार पर आपके समक्ष उपस्थित किया जा रहा है। आशा है इस भावपूर्ण और शिक्षाप्रद चरित को आप नवपद ओली के प्रसंग पर ध्यान पूर्वक श्रवण करके आत्मा का कल्याण करेंगे।

कल बतलाया गया था की श्रीपाल रत्न द्वीप में जा पहुँचे वहां पहुंचने के पश्चात् धवल सेठ ने उनसे कहा श्रीपालजी ! इस समय यहां सब वस्तुओं के भाव अच्छे हैं। अतएव अपने जहाजों का माल बेच डालो और इसके बदले यहां से दूसरा माल भर लो।

भाइयो ! एक बार अकबर बादशाह ने एक सोनी से पूछा अरे तू सुस्त क्यों दिखाई देता है ?

सोनी बोला–बादशाह सलामत ! आजकल सोने के दर्शन नहीं होते हैं। यही सुस्ती का कारण है।

बादशाह सोना मिल जाय तो क्या तेरी सुस्ती मिट जाएगी ?

सोनी–जी हां, जहापनाह !

बादशाह ने अपने महल के नौकर को आदेश दिया कि महल में सोने के जो बर्तन हैं, वे रोज इस सोनी को दिखा दिया करो।

सोनी ने बर्तन देखे। जो नौकर उन्हें साफ कर रहा था, उससे कहा-भाई, यह बर्तन मुझे साफ करने दे।

नौकर ने बादशाह से पूछा और बादशाह ने कह दिया अच्छा, इसी को साफ करने दे। सोनी प्रतिदिन वह स्वर्णपात्र साफ करने लगा। जिस रेत से वह बर्तन साफ करता था, उस रेत को शाम को घर ले आता था। कुछ दिनों के बाद बादशाह ने फिर पूछा-सोनी! अब 'तो तुझे रोजाना सोने के दर्शन हो जाते हैं। अब तू प्रसन्न है?

सोनी ने कहा- जहांपनाह! आप की मेहरबानी से अब मैं प्रसन्न हूं।

बादशाह ने पूछा-अरे; सोना देख लेने मात्र से तू कैसे प्रसन्न हो जाता है।

सोनी-हुजूर! सोने को देखने से मेरा सब काम बन जाता है।

इसी प्रकार की बात धवल सेठ के विषय में थी। यद्यपि श्रीपाल के जहाजों का माल उसका नहीं था तथापि उसे अच्छे दामों बिकता देख वह प्रसन्न होना चाहता था। उसे यह भी खयाल था कि यदि मैं अपनी इच्छा से माल बेचूँगा तो इससे मुझे भी कुछ लाभ हो जाएगा।

रत्नद्वीप में रत्न संचय नामक नगर था। वहां का राजा कनककेतु था। रत्नमाला उसकी पटरानी का नाम था। उसके एक

लड़की और चार लड़के थे। लड़की का नाम रत्नमंजूषा था। वह अत्यन्त सुन्दरी और समस्त कलाओं में कुशल थी। वह विवाह के योग्य हो चुकी थी। राजा बहुत तलाश करने पर भी उसके अनुरूप वर नहीं पा सका था। इस कारण वह चिन्तित रहता था।

एक बार राजा मुनि दर्शन के लिए गया और उनके समक्ष अपनी चिन्ता का कारण बतलाया। नीतिकार कहते हैं-नौ आदमियों को नींद नहीं आती है; जिनमें एक अविवाहित लड़की वाला भी है।

तो राजाने कहा-महाराज! राजकुमारी विवाह के योग्य हो गई है, परन्तु अभी तक कोई अनुरूप वर नहीं मिला है। कृपा कर बतलाइए कि उसे कब, कैसे और कौन वर मिलेगा? मेरी चिन्ता किस प्रकार मिटेगी?

वह जिन कल्पी मुनिराज थे। जिनकल्पी मुनि अपने ज्ञान में जैसा देखते हैं, वैसा कह देते हैं। अतएव उन्होंने कहा राजन् आपका पट्टहस्ती जिस दिन उन्मत्त हो जाएगा और उसे जो पुरुष वश में करेगा, वही आपकी कन्या का पति होगा।

राजा को सान्त्वना मिली। चिन्ता कम हो गई। कुछ समय के पश्चात् हाथी को उन्माद चढ़ा और वह बन्धन तोड़कर नगर में निकल पड़ा। नगर के लोगों में कोहराम मच गया।

सब भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। हाथी नगर में चक्कर लगाता हुआ अन्त में समुद्र की ओर बढ़ा, जहां श्रीपाल का तंबू लगा हुआ था। श्रीपाल के कानों में कोलाहल पड़ा तो बाहर निकले और विकराल हाथी को देखकर समझ गए कि यह उन्मत्त हो गया है। उन्होंने उसे पकड़ कर लोगों की चिन्ता और भीति दूर करने का विचार किया। वे हाथी की ओर बढ़े और हाथी उनकी ओर लपका। सन्निकट आते ही श्रीपालजी बड़ी फुर्त्ती और कुशलता के साथ उस पर चढ़ गए। तत्पश्चात् अंकुश के प्रहारों से उसे वशीभूत कर लिया। हाथी का उन्माद दूर हुआ और वह पहले के समान सीधा हो गया।

समग्र नगर में विद्युद्वेग से यह समाचार फैल गया कि एक परदेशी ने हाथी को वश में कर लिया है। लोग अपने-अपने घरों से निकलकर तमाशा देखने के लिए इकट्ठे हो गए। राजा को यह समाचार मिले तो उसे मुनिराज के वचन याद हो आए। उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि घर बैठे वर मिल गया। वह श्रीपालजी के निकट आया और उनकी वीरता का अभिनन्दन करता हुआ कहने लगा-नवयुवक! मैं तुम्हारी वीरता की प्रशंसा करता हूँ। मुनिराज ने बतलाया था कि मदोन्मत्त हाथी को वशीभूत करने वाला वीर पुरुष मेरा जामाता होगा। वह भविष्यवाणी आज सफल हुई।

श्रीपाल ने नम्रतापूर्वक कहा-महाराज! मैं एक परदेशी हूं।

आप मेरे विषय में कुछ भी नहीं जानते। एक अपरिचित को कन्या देना कहां तक उचित है, आप ही सोचें।

राजा ने कहा-मैंने मुनिराज के वचन को प्रमाण मान लिया है। अतएव आप इसके लिए इन्कार न कीजिए।

श्रीपाल राजा के आग्रह को टाल न सके। उन्होंने यह भी सोचा-घर बैठे आती लक्ष्मी को ठुकराना नहीं चाहिए। कहा भी है—

लक्ष्मी आई को भला, तज दे ऐसा कौन ?
कौन खीर मीठी तजी, लेगा सत्तू लौन ?

राजा श्रीपाल को बधा कर राजदरबार में ले गया। अत्यन्त सुन्दर मण्डप का निर्माण किया गया। विवाह के योग्य सभी प्रकार का समुचित आयोजन किया गया। शुभ मुहूर्त्त में रत्नमंजूषा का श्रीपाल के साथ विवाह सम्पन्न हो गया।

श्रीपालजी स्वर्ग के समान सुखों का उपभोग करते हुए वहां रहने लगे। एक बार वे अपनी दोनों पत्नियों के साथ मुनिराज के दर्शनार्थ गए। राजा कनककेतु भी वहां मौजूद थे। उसी समय नगर का कोतवाल वहां आया और बोला-महाराज ! एक चोर को पकड़ कर लाया हूँ। उसने राजकीय शुल्क नहीं चुकाया है। उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाय ?

राजा कुछ उत्तर देने ही वाला था कि बीच में श्रीपालजी

बोल उठे–अरे भाई धर्मस्थान न्यायालय नहीं है। महाराज जब दरबार में पधारें तो उसे पेश करना।

कोतवाल लौट गया। धर्मकथा सुनकर राजा कनककेतु, श्रीपाल और उसकी दोनों पत्नियां, सब राजमहल में लौट गए। थोड़ी देर बाद कोतवाल शुल्क चोर को पकड़ कर ले आया। वह चोर और कोई नहीं, धवल सेठ ही था।

धवल सेठ की शुल्क चोरी की आदत देख श्रीपाल को खिन्नता हुई। फिर भी उन्होंने राजा से कहा—महाराज, यह मेरे पिता समान हैं। इन्हीं के साथ मैं यहां आया हूँ, यह कोटयधीश श्रेष्ठी हैं। अगर इनसे थोड़ी भूल हो गई है तो उसे क्षमा कर दें।

राजा जामाता की बात को कैसे टालता? धवल सेठ छोड़ दिया गया। यही नहीं, राजा ने उसका खूब आदर सत्कार किया। धवल सेठ ने श्रीपालजी का बहुत उपकार माना।

एक दिन धवल सेठ ने कहा–श्रीपालजी! आपका सब माल बिक चुका है और उसके बदले नया किराना भी भर लिया गया है। जैसे तुम मुझे लाए हो, उसी प्रकार आनन्द-पूर्वक पहुँचा भी दो। मैं सदा आपका कृतज्ञ रहूंगा।

श्रीपाल ने सोचा—हम भी यहां पाहुने के रूप में हैं और

वापिस लौटना ही है। तो धवल सेठ के साथ ही लौटना अच्छा रहेगा।

यह सोच कर उन्होंने राजा से लौटने की अनुमति मांगी। राजा ने उन्हें अनुमति देते हुए कहा-बेटा, रत्नसजूषा मेरी एकाकिनी कन्या है और हम लोगों को प्राणों से भी अधिक प्यारी है। इसे सुखपूर्वक रखना। नववधू पाकर इसे भूल न जाना।

श्रीपाल बोले-पिताजीं ! मेरे विषय में स्वप्न में भी ऐसा न सोचिए। मैं अपने प्राणों के समान इसकी रक्षा करूँगा।

राजा ने अपनी कन्या को भी हितशिक्षा देते हुए कहा-बेटी ! पति को परमेश्वर के समान समझ कर प्रेमपूर्वक सेवा करना। ससुराल में जो सास जेठानी आदि हों उनका यथोचित सन्मान करना। सारे परिवार को अपना मान कर व्यवहार करना और संकीर्ण मनोभावना को कभी हृदय में स्थान न देना। बेटी ! तू देव और गुरु की भक्ति करना और धर्म को कभी न भूलना। अपनी सौतों के साथ बहिन सरीखा वर्त्ताव करना। अपने अधीनस्थ सेवकों के प्रति दया और सहानुभूति प्रदर्शित करना। संक्षेप में, अपने उत्तम व्यवहार के द्वारा अपने पितृवंश और पतिवंश की प्रतिष्ठा बढ़ाना।

इस प्रकार शिक्षा देकर राजा ने श्रीपाल के साथ रत्न-

संजूषा को विदा दी। श्रीपालजी और धवल सेठ का पूरा काफला यथा समय रवाना हो गया।

एक वार श्रीपालजी अपनी नवविवाहिता पत्नी रत्नमंजूषा के साथ बैठे वर्त्तालाप कर रहे थे। इसी बीच श्रीपाल ने उससे कहा—प्रिये! तुम्हारे पिताजी ने मुझ जैसे अज्ञात एवं अपरिचित व्यक्ति के हवाले तुम्हें कर दिया है। क्या उन्होंने यह ठीक किया है?

रत्नमंजूषा उत्तम संस्कार वाली महिला थी। उसने उत्तर दिया—पिताजी ने जो कुछ भी किया है, अच्छा ही किया है। मेरी समझ में उन्होंने आपको खूब अच्छी तरह पहचान लिया है।

श्रीपाल ने सन्तुष्ट होकर कहा—प्रिये! अब तुम मेरी अर्धाङ्गिनी हो मेरे विषय में तुम्हें पूरी जानकारी होनी चाहिए। अतएव मैं अपना परिचय तुम्हें देता हूँ।

यह कह कर श्रीपाल ने अपना समग्र वृत्तान्त रत्नमंजूषा को सुना दिया। उसे सुन कर रत्नमंजूषा ने अपने भाग्य की सराहना की और कहा—जैसे सीता को राम और रुक्मिणी को कृष्ण पति मिले थे, उसी प्रकार आप मुझे मिले हैं।

इधर इस प्रकार का आलाप-संलाप चल रहा था, उधर धवल सेठ दूसरी ही उधेड़बुन में लग रहा था। श्रीपाल का भाग्योदय उसे सहन नहीं हो रहा था। वह सोच रहा था यह

श्रीपाल अभी उस दिन खाली हाथ मेरे पास आया था। आज इस के ऐश्वर्य का क्या ठिकाना है ? यह अढ़ाई सौ जहाजों का स्वामी बन गया, दो-दो राजकुमारियों का स्वामी बन गया, सतमंजिल जहाज में मौज कर रहा है ! जहां जाता है, अपूर्व सत्कार पाता है। मगर जैसे हिरन शेर के पंजे में फँस जाता है, उसी प्रकार इस समय यह मेरे फँदे में है। यह कैसे इतना माल और रमणियों को सुरक्षित लेजा सकता है ! अगर इसे समुद्र में धकेल दिया जाय तो सारे धन-माल का मालिक मैं बन सकता हूं।

भाइयो ! संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो दूसरों का अभ्युदय देख नहीं सकते। वे यही सोच कर दुखी रहते हैं कि-हाय, इसके पास इतनी ऋद्धि क्यों है ? इसे इतना मान क्यों मिल रहा है ? यह सोच कर वे अकारण ही उसके प्रति द्वेष करने लगते हैं। द्वेष करने से दूसरे का कुछ बिगड़े या न बिगड़े, मगर वे अवश्य द्वेषानल में दग्ध होते रहते हैं। मेघ की आवाज को सुन कर जवासा सूखता जाता है। चारों ओर हरियाली होने पर सारे जानवर तो खुश होते हैं, परन्तु गधेड़ा नाराज होता है।

कोई जहर को पीकर अपनी प्यास बुझाना चाहे तो कैसे बुझ सकती है ? द्वेष करके कोई सुखी नहीं हो सकता।

कोई गजेन्द्र पहाड़ को देख कर यदि सोचता है कि यह मुझसे ऊंचा क्यों हो गया, और उसे दांतों का प्रहार करके खोदना

चाहता है वो उसी के दांत टूटेंगे। पहाड़ का कुछ बिगड़ने वाला नहीं है। उत्तराध्ययन में कहा है—

गिरिं नहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह।
जायतेयं पाएहि हणह; जेभिक्खु अवमन्नह ॥
—उत्तरा० अ० १२, २६

भाइयो ! हरिकेशी जाति से चाण्डाल थे, परन्तु भगवान् की वाणी सुन कर साधु हो गए। क्रोध रूपी चाण्डाल को अपने से दूर कर देने के कारण वे महात्मा बन गए थे। एक बार वे भिक्षा के लिए एक यज्ञ के बाड़े में जा पहूंचे। ब्राह्मणों ने उनका अपमान किया। तब उनकी सेवा में रहने वाले यक्ष ने उन्हें शिक्षा दी। कहा-जो लोग भिक्षु का अपमान करते हैं, वे नाखूनों से पर्वत को खोदते हैं, दांतों से लोहा चबाते हैं और जलती आग को पैरों से रोदना चाहते हैं। यह उन्हीं के लिए हानिकारक है। अन्त में उनकी बुद्धि ठिकाने आई। उन्होंने मुनि से क्षमा मांगी।

भाइयो ! यदि आप किसी के प्रति हृदय में द्वेष धारण करते हैं तो इससे उसकी क्या हानि होने वाली है ? आप स्वयं ही अपना अहित करेंगे। विवेकवान् व्यक्ति जगत् के समस्त जीवों के सुख की कामना करते हैं; किसी का अहित नहीं चाहते-

सुखी रहें सब जीव जगत के,
कोई कभी न घबरावे।

वैर पाप अभिमान छोड़ कर,
नित्य नये मंगल गावे ॥

मगर अभागा धवल सेठ श्रीपाल के सुख को देख कर दुखी रहने लगा। वह इसी धुन में रहने लगा की कब इसे मारा जाय और कब इसकी सम्पत्ति और पत्नियां मुझे मिल जाएँ। किन्तु लालच और काम, दोनों अनर्थ के मूल हैं।

धवल सेठ को चिन्तातुर देख कर श्रीपालजी ने एक बार पूछा—सेठजी ! आप उदास क्यों रहते हैं ? आपको कोई रोग तो नहीं हो गया है !

सेठ ऊपर से मीठा था, पर भीतर उसके हलाहल भरा हुआ था।

सेठ ने कहा-नहीं, रोग तो कोई नहीं है। प्रवास में यों ही कुछ गड़बड़ हो जाती है।

इस प्रकार बातचीत करके श्रीपालजी अपने स्थान पर चले गए। मगर सेठ के हृदय में आग लगी हुई थी। उसे शान्त करने के लिए उसने अपने खास चार सुभट बुलाए। वह उनसे एकान्त में मन की बात कहना चाहता था, परन्तु लज्जा के कारण जीभ लड़खड़ाने लगी। वास्तव में पतित से पतित आत्मा पाप करते समय एक बार झिझक जाता है। मगर धवल ने मन को पक्का किया और निर्लज्जता धारण की। फिर

तुम्हें अपने प्राणों के समान समझता हूँ, अतएव मन की बात कह रहा हूँ। यह प्रकट न होने पावे। तुम ऐसा कोई उपाय बतला सकते हो कि श्रीपाल की दोनों स्त्रियां मुझसे प्रेम करने लगें?

सुभट कहने लगे-सेठजी ! परस्त्री की इच्छा करना घोर पाप है। इस लोक और परलोक से विरुद्ध है। परस्त्रीगामी को नरक की यातना भुगतनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त श्रीपालजी आपके उपकारी हैं। उन्होंने अनेकों वार आपको संकट से बचाया है। आपके प्राणों और धन की रक्षा की है। ऐसे पवित्र और उपकारी का द्रोह करेंगे तो उनका कुछ बिगाड़ होगा या न होगा, पर आपके पाप आपको अवश्य खा जाएँगे। यह भी न भूलिए कि श्रीपालजी की पत्नियां उच्चकुल की हैं—राजवंश की हैं। वे परपुरुष की कदापि कामना नहीं करेंगी।

इस प्रकार चारों सुभट कह कर लौट आए। मगर इनमें एक स्वार्थी, कलुपितहृदय और पापी था। वह वापिस सेठ के पास पहुँचा और बोला-सेठजी ! ये तीनों आपका हित नहीं चाहते। मैं आपका सच्चा हितैषी हूँ। आपके मन में जो कामना उत्पन्न हुई है, उसे अवश्य पूर्ण कीजिए। उसे पूर्ण करने का उपाय भी है। नरक-स्वर्ग सब ढकोसला है। छल-बल से अपना काम बनाने वाला पुरुष ही इस दुनिया में सुखी होता है। आप सर्व-प्रथम श्रीपाल के हृदय में मीठी-मीठी बा कह कर विश्वास उत्पन्न कीजिए। तत्पश्चात् आगे का काम सरल हो जाएगा।

इस आदमी का कथन सेठ को रुच गया। सेठ ने अवसर देख कर श्रीपाल को अपने पास बुलाया और मिष्ट वचनों से कहने लगा-श्रीपालजी ! आप अत्यन्त पुण्यवान् हैं, गुणवान् हैं और मेरे महान् उपकारी हैं, इत्यादि। इस प्रकार सेठ ने श्रीपाल के हृदय में अपना गहरा स्थान बना लिया।

कुछ समय पश्चात् धवल सेठ के कुमति मित्र ने कहा-सेठजी, अब काम करने का समय आ गया है। आप एक पाटा बनवाइए और उसे रस्सी से बांध कर समुद्र में लटकवा दीजिए। फिर देखने के बहाने श्रीपाल को पाटे पर उतारिए और जब वह उतर जाय तो रस्सी काट दीजिए। रस्सी कटते ही श्रीपाल समुद्र में गिर जाएगा।

यह उपाय सुनकर सेठ बहुत प्रसन्न हुआ और अपने कुमति मित्र को शाबासी देते हुए कहा-वाह मित्र ! तू ने बहुत उत्तम उपाय बतलाया है।

कुमति मित्र के परामर्श के अनुसार धवल सेठ ने सारी व्यवस्था करवा कर श्रीपाल को बुलाया। उसे पाटिये पर चढ़ाया और कहा-देखो श्रीपालजी ! वह मगर कितना विशाल और अद्भुत है।

भाइयो ! चोरी करने वाले भी इसी प्रकार बात बनाकर और दूसरों को धोखे में डालकर हाथ साफ कर जाते हैं। पंजाब-

भ्रमण के समय मैं पंचकूला-गुरुकुल देखने गया। उन दिनों एक व्यक्ति अपने लड़के को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने आया। वह गुरुकुल-संचालक से कहने लगा–महाराज ! मेरे लड़के में एक बड़ा ऐब चोरी करने का आ गया है। वह किसी की वस्तु को चालाकी से चुरा लेता है। आपके संसर्ग से सुधर जाएगा तो आपका मुझ पर बड़ा ऐहसान होगा।

संचालक ने कहा–मैं उसे सुधारने का प्रयत्न करूँगा। किसी प्रकार की चिन्ता न करो। समझ लो कि तुम्हारा उद्देश्य अवश्य पूरा हो जाएगा।

लड़का गुरुकुल में प्रविष्ट हो गया। पिता चला गया, तब संचालक (श्रीधनीरामजी) उस लड़के को बुलाकर प्रेम से बातें करने लगे। एक दिन उन्होंने उससे कहा–बेटा, मुझे चोरी करना सीखना है, क्या तू मुझे सिखा सकता है ?

लड़का उत्साहित होकर बोला–क्यों नहीं महाराज ! यह तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है। यह कहकर उसने कहा–महाराज, वह अनोखी चिड़िया कौन-सी है ?

महाराज उधर देखने लगे। इसी समय उसने मेज पर पड़ी पुस्तक उठाई और गायब कर दी।

धनीरामजी ने कहा—कहां है चिड़िया ?

बालक—वह तो उड़ गई महाराज।

धनीरामजी—अच्छा तो चोरी करना सिखलाओ।

बालक—सिखा तो दिया।

धनीरामजी—कैसे ?

बालक—आपकी पुस्तक कहां है ?

धनीराम उसकी ओर देखते ही रह गए।

इसी प्रकार धवल सेठ ने भी श्रीपालजी का ध्यान बंटाने के लिए मगर की ओर देखने के लिए कहा। जब श्रीपाल मगर देखने को झुके तभी धवल सेठ के कुमति मित्र ने रस्सी काट दी। रस्सी का कटना था कि श्रीपालजी अथाह सागर में जा गिरे। उस समय उन्होंने नवपदजी का ध्यान किया कि एक मगर की पीठ पर सवार हो गए। मगर उन्हें किनारे पर ले गया।

भाइयो ! बात बड़ी अद्भुत जान पड़ती है, किन्तु पुण्य के योग से संसार में ऐसी ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जिनकी कल्पना भी साधारण बुद्धि नहीं कर सकती। जिनके पोते में पुण्य है, उसका कोई बाल भी वांका नहीं कर सकता—

जितने तारे गगन में, उतने दुश्मन होय।
जो पुण्य पोते आपणा, बाल न वांको होय॥

पुण्यवान् पुरुष के लिए सर्प सुमनमाला और अग्निकुंड जलकुंड बन जाता है। पुण्यशाली पुरुष के लिए पग-पग पर निधान हैं।

श्रीपालजी ऐसे ही प्रचण्ड पुण्य के पात्र थे। किनारे पर पहुँच कर थकावट के कारण उन्हें निद्रा आने लगी और वे एक वृक्ष के नीचे सो गए। जब सोकर उठे तो देखते हैं कि नंगी तलवारें लिये सुभट उन्हें घेरे खड़े हैं, यह दृश्य देखकर श्रीपाल सोचने लगे–यह फिर कौन-सी नयी मुसीबत आ खड़ी हुई।

वहां का राजा पशुपाल था। वनमाला उसकी महारानी थी, राजा की गुणमाला नामक एक कन्या थी। वह जब पढ़-लिखकर कुशल और विवाह के योग्य हो गई तो राजा को चिन्ता होने लगी। उसने एक दिन निमित्तज्ञों को बुलाकर पूछा–मेरी कन्या का भर्त्तार कौन होगा? उन्होंने शास्त्रों को देखकर बतलाया–महाराज! राजकुमारी का पति वही होगा जो सागर के किनारे चम्पा के वृक्ष के नीचे सोता हुआ पाया जाएगा। उसका निशान यह है कि उसके सिर पर से छाया नहीं जाएगी।

इस प्रकार ज्योतिषियों के कथनानुसार ही श्रीपाल चंपा वृक्ष के नीचे सोते पाए। ज्यों ही वह सोकर उठे, सब सुभट नतमस्तक हो गए। उनमें जो प्रधान था, वह कहने लगा–कुमार! आप बड़े ही पुण्यवान् और गुणवान् हैं। आपको हमारे महाराज ने याद किया है। घोड़े पर सवार होकर पधारिए।

श्रीपालजी घोड़े पर चढ़कर राजा के वहां गए। राजा को सूचना दी गई। उसका हृदय विकसित हो उठा। वह मोतियों

से वधाकर श्रीपालजी को महल में ले गया। खूब सन्मान-सत्कार किया। तत्पश्चात् शुभ मुहूर्त्त में गुणमाला के साथ उनका विवाह कर दिया। पति-पत्नी आनन्दपूर्वक रहने लगे।

जो जीव संसार में रहते हुए पुण्य का संचय करेंगे, वे इस लोक और परलोक में सुखी होंगे।

केन्टोनमेन्ट बैंगलोर
१२-१०-५६

ओली तप

[६]
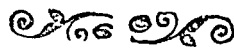
भाइयो !

श्रीसमवायांग सूत्र के तेईसवें समवाय में से कल सूयगडांग सूत्र के तेईस अध्ययनों का वर्णन किया गया था। आगे शास्त्रकार फर्माते हैं—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, इस अवसर्पिणी काल के ऋषभदेव से लेकर पार्श्वनाथ पर्यन्त तेईस तीर्थङ्करों को सूर्योदय के समय में केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, इस अवसर्पिणी काल के तेईस तीर्थङ्कर—श्री आदिनाथ को छोड़ कर अजितनाथ से श्रीमहावीर पर्यन्त पूर्वभव में ग्यारह अंगों के पारगामी थे। यह भी बतलाया गया है कि ऋषभदेव भगवान् पूर्वभव में चौदह पूर्वों के ज्ञाता थे।

पूर्वभव में आदिनाथ चक्रवर्ती थे और अन्य तेईस तीर्थङ्कर माण्डलिक राजा थे।

दूसरे तीर्थङ्कर का नाम अजितनाथ रक्खा गया, क्योंकि जब वे गर्भ में थे तो माता महारानी अपने पति से द्यूत में जीती थी। अतएव जन्म लेने पर उनका नाम अजित रख दिया गया।

तीसरे संभवनाथ हैं। जब वे माता के गर्भ में नहीं आए थे, तब पृथ्वी पर धान्य की बहुत कमी थी। परन्तु उनके गर्भ में आते ही खूब उपज हुई और लोगों के घर धान्य से भर गए। अतएव उनका नाम 'संभव' रक्खा गया।

चौथे अभिनन्दननाथ हैं। जब वे माता के गर्भ में थे, तब इन्द्र ने आकर बार-बार उनका अभिनन्दन-स्तवन किया था, अतः वे अभिनन्दननाथ कहलाए।

गर्भ में आने पर माता की बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो जाने के कारण पांचवें तीर्थङ्कर का नाम सुमतिनाथ पड़ा। कहते हैं-एक बार दो स्त्रियां राजा के समीप एक विवाद लेकर आईं। दोनों के बीच एक लड़का था। दोनों उसे अपना-अपना लड़का बतलाती थीं। राजा पशोपेश में पड़ गए। उनकी समझ में नहीं आता था कि आखिर किस आधार पर उचित न्याय किया जाय? राजा ने महारानी से इस विवाद के विषय में बात की तो महारानी ने कहा-इसका न्याय मैं करूँगी।

दूसरे दिन महारानी के सामने दोनों स्त्रियां पेश की गईं। दोनों ने अपना-अपना दावा दोहराया। तब महारानी ने अपने

सेवक को एक करौत लाने का आदेश दिया। जब करौत आ गई तो कहा–अच्छा इस लड़के को बीच से चीर दो और दो फाड़ कर दो। दोनों को एक-एक फाड़ बांट दो।

यह आदेश सुनते ही लड़के की वास्तविक माता का हृदय कांप उठा। उसने विकल होकर कहा–लड़के पर यह जुल्म न कीजिए। मैं अपना दावा त्यागती हूं। यह लड़का इसी को दे दीजिए।

दूसरी स्त्री चुपचाप रही। इस घटना से स्पष्ट हो गया कि लड़के की असली माता कौन है? जो असली माता थी, वह लड़के का चीरा जाना सहन नहीं कर सकती थी। रानी समझ गईं और उन्होंने असली माता को पहचान कर उसी को लड़का दे दिया। नकली मां को दंड दिया गया।

इस प्रकार भ० सुमतिनाथ के प्रभाव से माता को सुमति आई; अतएव उनका नाम 'सुमति' हो गया। मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि जब भी आपके सामने कोई जटिल समस्या उपस्थित हो और उसको सुलझाने का उपाय आपकी समझ में न आवे, तब आप भगवान् सुमतिनाथ का स्मरण करें। उनका स्मरण करने से आपके अन्तःकरण में सद्बुद्धि उत्पन्न होगी और आप समस्या को सुलझाने का सामर्थ्य प्राप्त कर सकेंगे।

माता को पद्म-कमल का दोहद उत्पन्न होने के कारण

अथवा पद्म के समान शरीर का वर्ण होने के कारण छठे तीर्थङ्कर का नाम पद्मप्रभ रक्खा गया।

सातवें तीर्थङ्कर का नाम सुपार्श्वनाथ है। जब वे माता के उदर में आए तो माता के दोनों पार्श्व बहुत सुन्दर हो गए थे। यही इस नाम का कारण था।

आठवें चन्द्रप्रभ स्वामी हैं। गर्भ में आने पर माता को चन्द्रमा का पान करने की अभिलाषा हुई थी, अतएव जन्म होने पर उनका नाम चन्द्रप्रभ रक्खा गया।

भाइयो! आकाश में स्थित चन्द्रमा का पान करना संभव नहीं था और दोहद की पूर्त्ति करना भी आवश्यक था। तब एक युक्ति निकाली गई। शारद निशाकर अपनी समस्त कलाओं के साथ देदीप्यमान हो रहा था और अपनी शीतल रश्मियों से सब प्राणियों को आह्लाद दे रहा था। ऐसे समय में, स्वर्ण के कटोरे में दूध मँगवाया गया। चन्द्रमा उसमें प्रतिबिम्बित हो उठा। तब महाराज ने कहा-लो महारानीजी, इस चन्द्रमा को पी लो। महारानी ने उसका पान किया और उनकी अभिलाषा पूरी हो गई।

नौवें तीर्थङ्कर सुविधिनाथ हैं। गर्भ में आने पर उनकी माता शोभन विधि-विधान वाली हुई, इस कारण उनका नाम भी सुविधि रक्खा गया। इस सम्बन्ध में एक कथानक इस प्रकार है-

एक पुरुष अपनी पत्नी के साथ जा रहा था। रास्ते में वह

लघुशंकानिवारण के लिए बैठा। उसी समय जंगल की एक देवी उसके पीछे लग गई। उसने असली स्त्री का रूप बना लिया था। एक-सी दो स्त्रियों को देख कर पुरुष हक्कावक्का हो गया। दोनों उसकी पत्नी होने का दावा करने लगीं। पुरुष की समझ में न आया कि यह स्त्री मेरी या यह? आखिर वह दोनों को लेकर राजदरबार में पहुँचा। राजा भी इस अनूठे विवाद को सुनकर चक्कर में पड़ गए। आखिर महारानी ने फैसला करने का उत्तर-दायित्व अपने ऊपर लिया।

दूसरे दिन महारानी के समक्ष वह पुरुष दोनों स्त्रियों के साथ उपस्थित हुआ। महारानी के पूछने पर एक स्त्री ने कहा—यह पति मेरा पति है। दूसरी ने भी दावा किया—नहीं, यह मेरा पति है। तब महारानी ने कहा—अच्छा, दूर खड़ी रह कर जो इसे पहले हाथ लगा देगी, उसीका पति समझा जाएगा। यह सुनकर देवी ने अपना हाथ लम्बा करके पुरुष का स्पर्श कर लिया। असली स्त्री मानुषी होने के कारण ऐसा न कर सकी।

महारानी ने असलियत समझ कर निर्णय कर दिया कि जो स्त्री हाथ नहीं लगा सकी है, यह उसीका पति है।

इस प्रकार का विधि-विधान माता द्वारा करने के कारण नौवें तीर्थङ्कर सुविधिनाथ कहलाए।

दसवें तीर्थङ्कर शीतलनाथ हैं। पिता के शरीर में पित्त-

दाह उत्पन्न हो गया। वैद्य थक गए, मगर दाह शान्त नहीं हुआ। भगवान् जब गर्भ में आए और उनकी माता ने शरीर पर हाथ फेरा तो दाह एकदम शान्त हो गया। इस कारण उनका नाम 'शीतल' रक्खा गया।

ग्यारहवें देवाधिदेव श्रेयांसनाथ हैं। जब भगवान् गर्भ में आए तो पिता के घर में देवाधिष्ठित एक शय्या थी। उस पर जो बैठता या लेटता, उसे असमाधि उत्पन्न हो जाती थी। माता को उसी शय्या पर सोने का दोहद हुआ। उन्होंने उस पर शयन किया, किन्तु उपद्रव नहीं हुआ। अतएव भगवान् का नाम श्रेयांसनाथ रक्खा गया।

बारहवें तीर्थङ्कर वासुपूज्य हैं। भगवान् जब गर्भ में आए तो वासव (इन्द्र) ने माता की बार-बार पूजा की। अतएव उनका नाम वसुपूज्य रक्खा गया।

तेरहवें विमलनाथ भगवान् जब माता के गर्भ में आए तो माता की बुद्धि अतीव निर्मल हुई। इस कारण उनका नाम विमलन पड़ा।

चौदहवें अनन्तनाथजी जब माता के उदर में अवतरित हुए तो माता ने बहुत बड़ी माला स्वप्न में देखी इस कारण वे अनन्तनाथ कहलाए।

पन्द्रहवें भगवान् धर्मनाथजी जब माता के गर्भ में आए तो माता पिता धर्म में अत्यन्त दृढ़ हुए, इस कारण उनका नाम धर्मनाथ हुआ।

सोलहवें शान्तिनाथ भगवान् हैं। इनके गर्भ में आने से पहले देश में भयंकर महामारी फैली हुई थी। जब भगवान् गर्भ में आए तो महामारी शान्त हो गई, अतः वे शान्तिनाथ कहलाए।

सत्तहरवें कुंथुनाथ स्वामी जब माता के उदर में आए तो माता ने रत्नमयी कुंथुओं की राशि देखी, इस कारण वे कुंथुनाथ कहलाए।

उत्तम महासत्वशाली कुल में उत्पन्न होने के कारण तथा माता द्वारा रत्नमयी अर स्वप्न में देखने के कारण अठारहवें तीर्थङ्कर अरनाथ कहलाए।

उन्नीसवें मल्लीनाथ हैं। जब उनका गर्भ में आगमन हुआ तो माता को सुगंधित फूलों की माला की शय्या पर सोने का दोहद उत्पन्न हुआ था। देवता ने उसकी पूर्त्ति की। अतएव उनका नाम मल्लीनाथ हुआ।

जब मुनिसुव्रतनाथ गर्भ में आए तो माता मुनि की तरह सुन्दर व्रतों का पालन करने में तत्पर हुई, अतएव जन्म होने पर उनका नाम मुनिसुव्रत रक्खा गया।

इक्कीसवें नमिनाथ भगवान् जब गर्भ में आए तो वैरी

राजा भी नम गए, अतएव उनका नाम नमिनाथ पड़ा।

बाईसवें अरिष्टनेमि भगवान् जब माता के गर्भ में आए तो माता ने अरिष्टरत्नमय बहुत बड़ी नेमि (चक्रधारा) आकाश से गिरती देखी थी। अतएव वे अरिष्टनेमि कहलाए।

तेईसवें पार्श्वनाथ स्वामी हैं। जब भगवान् गर्भ में आए तो शय्या पर बैठी हुई माता ने अंधकार में जाता हुआ सर्प देखा। माता-पिता ने विचार किया कि यह गर्भ का ही प्रभाव है। अथवा पार्श्व नामक यक्ष ने वैयावृत्य की। इस कारण यह नाम हुआ।

चौबीसवें तीर्थङ्कर जब माता के गर्भ में स्थित थे, तब माता-पिता के यहां धन-धान्य की अत्यन्त वृद्धि हुई। इस कारण उनका नाम 'वर्द्धमान' रक्खा गया।

आगे शास्त्रकार फर्माते हैं कि मेरू पर्वत से दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र की सीमा निर्धारित करने वाला चुल्लहिमवन्त पर्वत है और उत्तर दिशा में ऐरवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला शिखरि पर्वत है। इन दोनों पर्वतों की जीवा (डोरी) चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस (२४९३२) योजन और आधी कला विशेष कही गई है।

आगे बतलाया गया है कि चौबीस स्थान इन्द्रसहित हैं, यथा— १० भवनपति, ८ वाणव्यन्तर, ५ ज्योतिषी और १ वैमानिक। इनके अतिरिक्त नौ ग्रैवेयक विमानों और पांच अनुत्तर

विमानों के देव अहमिन्द्र हैं अर्थात् उनमें स्वामी-सेवक का भेद नहीं है। वे सब स्वतन्त्र हैं।

जब सूर्य उत्तरायणगत होता है अर्थात् मकरसंक्रान्ति के दिन निषध पर आता है, उस समय चौबीस अंगुल छाया होने पर एक प्रहर दिन व्यतीत हुआ कहलाता है।

गंगानदी और सिन्धुनदी चुल्लहिमवान् पर्वत से निकलती हैं। जिस स्थान से वे निकलती हैं, वहां उनका विस्तार चौबीस कोस से कुछ अधिक है। इसी प्रकार शिखरि पर्वत से निकलने वाली रक्ता और रक्तवती नदियां अपने उद्गमस्थल में चौबीस कोस से कुछ अधिक विस्तृत हैं।

आगे कहा गया है प्रथम नरकभूमि के कितनेक नारकों का आयुष्य चौबीस पल्योपम का है। सातवें नरक के किसी किसी नारक की आयु चौबीस सागरोपम की है।

प्रथम और द्वितीय देवलोक के किसी-किसी देव की स्थिति चौबीस पल्योपम की कही गई है। तीसरे ग्रैवेयक के देवों की जघन्य स्थिति चौबीस सागरोपम की है। दूसरे ग्रैवेयक विमान के देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौबीस सागरोपम की है।

चौबीस सागरोपम की स्थिति वाले देव चौबीस पक्ष में एक बार श्वासोच्छ्वास लेते हैं। चौबीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर उन्हें आहार करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

इस संसार में कोई-कोई ऐसे भव्य जीव हैं जो चौवीस भव करके सिद्ध बुद्ध और मुक्त होंगे तथा समस्त कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करेंगे।

भाइयो! भगवान् तीर्थङ्करों ने जैसा-जैसा भाव देखा, वैसा ही कहा है। उसी को गणधरों ने आगम में ग्रथित किया है। उनमें से कितनी ही वस्तुएँ प्रत्यक्ष में देखी जा सकती हैं और कितनी ही तर्क से सिद्ध होती है। मगर कुछ बातें ऐसी भी हैं जिनमें हमारे प्रत्यक्ष और तर्क का प्रवेश नहीं हो सकता। ऐसी बातों पर श्रद्धा रखना चाहिए, क्योंकि वीतराग का वचन अन्यथा नहीं हो सकता। जो वीतराग महापुरुषों के वचनों पर प्रगाढ़ श्रद्धा रखते हैं उनका भवसागर से निस्तार हो जाता है।

श्रीपाल चरित—

श्रीपाल ने भगवान् के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा रक्खी तो उन्हें आनन्द ही आनन्द प्राप्त होता गया। प्रत्येक दुर्घटना उनके लिए मगलकारी सिद्ध हुई।

कल बतलाया गया था कि धवल सेठ की दुष्ट बुद्धि के कारण जब श्रीपालजी समुद्र में गिर गए तो एक मगर की पीठ का आश्रय लेकर किनारे लगे। वहां की राजकुमारी के साथ उनका विवाह हो गया और वे आनन्दपूर्वक रहने लगे। कुछ काल बीत जाने पर एक दिन गुणमाला ने उनसे कहा—प्राणनाथ! कृपा

करके यह बतलाइए कि आपके माता-पिता कौन हैं? किस वंश को आपने उज्ज्वल किया है? कहां के निवासी हैं? किस प्रकार आपका यहां आगमन हो गया?

इन प्रश्नों को सुन कर श्रीपालजी को विनोद करने की सूझी। वे विनोद में ही उत्तर देते हुए कहने लगे—प्रिये! मेरा वंश तो समुद्र है। इसी वंश में मेरा अवतार हुआ है। मेरी जाति कीचड़ है। मच्छ-कच्छ मेरे भाई-बन्धु हैं।

गुणमाला यह उत्तर सुन कर मुस्कराई तो सही, परन्तु उसकी मुस्कराहट में फीकापन था। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जानबूझ कर मुझसे वास्तविकता छिपाई गई है। उसने कहा—नाथ, यह क्या कह रहे हैं? आप मुझसे छल करते हैं या मजाक कर रहे हैं? मैं आपका वास्तविक वृत्तान्त जानना चाहती हूँ।

श्रीपाल ने देखा कि मेरे विनोद से गुणमाला को खेद हो रहा है। तब वे बोले-तुम मेरी जीवनसंगिनी बन चुकी हो। तुमसे छल करना अपने से ही छल करना है। मैंने तो विनोद के लिए ही वह कहा था। इस प्रकार कह कर श्रीपाल ने प्रारम्भ से अन्त तक का अपना समग्र वृत्तान्त गुणमाला को बतलाया, जिसे आप पहले ही जान चुके हैं। उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

गुणमाला को जब श्रीपालजी का शानदार जीवनवृत्तान्त

विदित हुआ तो उसकी प्रसन्नता का पार नहीं रहा। वह अपने सौभाग्य की भूरि-भूरि सराहना करने लगी। न रहा गया तो बोली—नाथ ! मैं आपसे कम पुण्यशालिनी नहीं हूँ, क्योंकि आप जैसे महान् पुण्यशाली, पराक्रमी और गुणवान् पति मुझे प्राप्त हुए हैं। आप जैसे पुण्यपुरुष की पत्नी होना साधारण पुण्य के उदय से संभव नहीं।

इस प्रकार श्रीपालजी इधर आनन्द का उपभोग कर रहे हैं। अब जरा धवल सेठ की ओर दृष्टिपात करें।

श्रीपाल को समुद्र में गिराने के बाद धवल सेठ अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न हुआ। सोचने लगा-चलो, मेरे रास्ते का कांटा दूर हो गया। अब उसके तमाम जहाज और दोनों स्त्रियां मेरे कब्जे में हैं। मगर स्त्रियों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए मुझे शोक प्रकट करने का दिखावा करना चाहिए और उन्हें धैर्य बँधाना चाहिए। तत्पश्चात् प्रलोभन देकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लूँगा।

धवल सेठ बड़ा ही कपटी था। उसके हृदय में भयानक विष था, परन्तु जीभ में बड़ा मिठास था। अतएव श्रीपाल के समुद्र में गिरते ही वह रुदन करने लगा और कहने लगा-हाय रे विधाता ! तूने क्या अनर्थ कर डाला ! श्रीपाल को समुद्र में गिरा दिया ! अरे बेटा, तुम मुझे अकेला छोड़कर कहां चले गए?

तुम्हारे जैसा हितैषी मुझे कहां मिलेगा ? तुम्हारे बिना मुझे कैसे चैन पड़ेगा।

इस प्रकार दिखावटी प्रलाप करता हुआ मायावी सेठ दोनों स्त्रियों के पास पहुंचा। पहले दासियों को सूचना दी, रोती-कलपती दासियां महारानियों के गईं। उन्होंने अचानक रोने का कारण पूछा तो दासियों ने रुद्ध कंठ से कहा-स्वामिनी! कैसे कहें ? किस मुख से कहें ? हाय, हमारा तो भाग्य ही फूट गया।

रानियों ने कहा-अरी, कुछ कहो भी! हुआ क्या है?

तब दासियों ने कहा-कुंवर साहब मगर को देखने के लिए पाटे पर चढ़े थे। रस्सियों पर पाटा लटका था। रस्सियां अचानक टूट गई और वे समुद्र में गिर गए।

यह असह्य समाचार सुनकर दोनों रानियां मूर्छित हो गईं। इस वज्रपात को वे सहन न कर सकीं, दासियों ने ठंडी हवा की, शीतल जल का छिड़काव किया। तब थोड़ी देर बाद वे होश में आईं और हृदय द्रावक विलाप करने लगीं-हाय दुर्दैव, यह क्या दिखलाया तूने ? कहां पीहर रह गया, कहां सासरा रह गया! प्राणनाथ! आप बीच में ही छोड़ कर कहां चले गए? आपके बिना हम कैसे प्राण धारण करेंगी?

दासियों ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा-इस प्रकार धीरज खोने से क्या होगा! होनहार टाली नहीं टलती। जो परिस्थिति

सामने आए, साहस के साथ उसका सामना करने में ही बुद्धिमत्ता है। आप चिन्ता न करें। कुंवर साहब जैसे पुण्यात्मा पुरुष इस प्रकार अकाल में नहीं जा सकते। भाग्य होगा तो फिर कभी न कभी मिलेंगे।

भाइयो ! प्रत्येक मनुष्य के जीवन में इस प्रकार की अमंगल-घटनाएँ घटित होती हैं। जो घटना घटित हो जाती है; उसके लिए रोने, विलाप करने, क्रन्दन करने और हाय हाय करने से कोई लाभ नहीं होता। गई वस्तु आर्त्तध्यान करने से वापिस नहीं मिलती। ऐसे समय में संसार के अनित्य स्वरुप का चिन्तन करके धैर्य धारण करना ही उचित है यही एक मात्र शान्ति और सान्त्वना का आधार है। एक कविने कहा भी है—

गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वंछे नाहिं।
वर्त्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग मांहिं ॥

अर्थात्—ज्ञानवान् पुरुष वही है जो गई वस्तु के लिए शोक नहीं करता और भविष्य के लिए कोई अभिलाषा नहीं रखता। वह तो वर्त्तमान को ही देखता है और उसी में आनन्द मानता है। वैष्णव संत ने कहा है—

जा विध राखे राम ताहि विधि रहिए।

तो दासियों ने दोनों महारानियों को किसी प्रकार धैर्य बँधाया। उन्होंने आभूषण उतार कर रख दिये। कहा—नाथ के

बिना इन आभूषणों की आवश्यकता ही क्या है! शृंगार तो उनके लिए था। जब वे ही नहीं तो शृंगार निरर्थक है। कर्मों की गति बड़ी विचित्र है—

कर्म प्रताप तुरंग नचावत,
कर्म से छत्रपती नर होई।
कर्म सेपूत कपूत कहावत,
कर्म से नार मिले सगा सोई।
कर्म से बी फिरी रावण की,
तब सोने की लंका पलक में खोई।
आप गुमान करत क्या मूरख,
कर्म करे सो करे नहीं कोई॥

भाइयो! इन कर्मों के आगे किसी की नहीं चलती। इसी प्रकार कर्म सिद्धान्त की बात सोच कर दोनों विचार करने लगीं-हमने पूर्वजन्म में ऐसे ही पापकर्म किये होंगे। पर-पुरुष की चाह की होगी, किसी की बुराई की होगी, किसी पर झूठा तोहमत लगाया होगा, शिकार खेला होगा, मांस एवं मदिरा का सेवन किया होगा या ऐसा ही कोई दूसरा पाप किया होगा। न जाने किस जन्म में किए पाप आज उदय में आए हैं। हाय, अब भगवान् के सिवाय इस समुद्र के बीच कौन हमारा रक्षक है?

दोनों रानियों को अत्यधिक दुःखी देखकर श्रीपालजी के

प्रति सद्भावना रखने वाला सुमति मित्र आया। उसने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—अब रुदन करने से क्या बनने वाला है? कर्मों का विपाक बड़ा कठोर होता है। राम, लक्ष्मण और सीता जैसों को भी वन में भटकना पड़ा! अब तो आप भगवान् का ही चिन्तन-स्मरण कीजिए। इसी से शान्ति प्राप्त होगी। दुःख के सागर से पार उतारने वाला धर्म ही है। संसार में संयोग के बाद वियोग अवश्यंभावी है। यह तो धर्मशाला है, जिसमें पथिक आते और जाते रहते हैं। बड़े-बड़े तीर्थङ्कर, चक्रवर्त्ती और वासुदेव जैसे महान् पुरुषों को भी आयु का अन्त आने पर शरीर त्यागना पड़ा तो सामान्य जनों की कथा ही क्या है! जो आया है उसे जाना ही पड़ेगा। अन्तर है तो यही कि कोई आज तो कोई कल जायगा, स्थायी रहने वाला कोई नहीं है।

इस प्रकार समझाने-बुझाने से दोनों रानियों को कुछ सान्त्वना मिली। उसी दिन से वे पंचपरमेष्ठी मंत्र का जाप करने लगीं और भगवान् से प्रार्थना करने लगीं—हे भगवान्! अब तो आप ही भंवर में फँसी हमारी नाव को किनारे लगा सकते हैं। आपके सिवाय इस संसार में हमारा कोई सहायक नहीं है।

धवल सेठ भी उन्हें धैर्य बँधाने के लिए पहुँचा और कहने लगा—असमय में अचानक घटी हुई इस घटना के लिए किसे दोष दिया जाय। यह सब कर्मों का दोष है। मौत के मार्ग को

कोई रोकने वाला नहीं। कराल काल करुणा करना नहीं जानता। कवि ने कहा है—

> बाल कहा जाने बात हिताहित,
>
> अंध कहा जाने बाट यही है।
>
> मेघ कहा जाने भूमि शुद्धाशुद्ध,
>
> आग कहा जाने छात नई है।
>
> मौत कहा जाने रांड को बालक,
>
> काल कहा जाने एकलोई है।
>
> दुष्ट कहा जाने दया को मारग,
>
> चोर कहा जाने खटाव नहीं है॥

बालक को क्या पता कि पिता की क्या परिस्थिति है और अमुक चीज मांगें या नहीं? वह मनचाही चीज मांगता है और जब नहीं मिलती तो रोने लगता है। अन्धे मनुष्य को क्या मालूम कि यह रास्ता सही है या गलत है? और यह किस गांव को जाता है? मेघ नहीं जानता कि कहां बरसूँ और कहां न बरसूँ आग नहीं सोचती कि इस नवीन मकान को बचा दूँ और पुराने ही मकानों को जलाऊँ। इसी प्रकार मौत भी नहीं देखती कि इस विधवा का यह इकलौता बेटा है, इसे छोड़ दूँ। दुष्ट के दिल में दया नहीं होती। वह नहीं सोचता कि इस गरीब को मैं न सताऊँ। चोर यह कब देखता है कि जिसके घर में चोरी

कर रहा हूं, उसके घर में खटाव है या नहीं ? वह तो जहां दाव लगता है, वहीं से उठा ले जाता है।

धवल सेठ फिर कहने लगा—श्रीपालजी तो मोती-माणक जैसे थे। उनके गुणों का स्मरण आते ही नेत्रों से आंसू बरसने लगते हैं। वे अपनी शानी के एक ही थे। वह इतने गुणवान् हैं कि जहां भी जाएँगे, वहीं आनन्द करेंगे। अतएव उनके लिए आप क्यों दुखी होती हैं।

धवल सेठ के अन्तिम शब्द सुन कर दोनों रानियां एकदम चौंक उठीं। उन्हें सन्देह हो गया कि कहीं यह करतूत इसी की तो नहीं है। लालच में आकर इसीने तो यह पैशाचिक कृत्य नहीं कर डाला ? जो हो, इससे सावधान रहना चाहिए।

कुछ दिन बीत जाने पर धवल सेठ ने एक दूती को बुलाया और उससे कहा—यदि तू इन दोनों स्त्रियों को मेरे अनुकूल बना देगी तो तुझे मालामाल कर दूंगा। दूती लोभ में आकर उसकी सहायता करने को तैयार हो गई।

एक दिन अवसर देख कर उसने रानियों से कहा—आप तो समझदार हैं और सच्ची समझदारी इस बात में है कि मनुष्य अपने दुःख को सुख में परिणत कर डाले। संसार में एक जाता है, दूसरा आता है। जो गया उसके लिए रोती रहने से यह ज़िंदगी बर्बाद हो जाएगी। सेठजी ही अब श्रीपाल के स्थान पर

हैं। वही आपको सुखी बना सकते हैं। आप चाहें तो गया हुआ सुख वापिस आ सकता है।

रानियां सेठ के कुचक्र को समझ गईं। उन्होंने यह भी समझ लिया कि हमारे पति को इसी ने समुद्र में पटका है। वे कहते थे—धवल हमारा धर्म का बाप है, परन्तु यह तो पाप का बाप निकला ! कितना पामर, अधम और पापी है यह।

रानियों ने बुरी तरह दुतकार कर दूती को भगा दिया। वह अपनी जान बचा कर भागी। उसने समझ लिया कि इन तिलों में से तेल निकलने वाला नहीं है। यह अपने सतीत्व का त्याग नहीं कर सकतीं।

दूती ने धवल सेठ के सामने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा—सेठ साहब ! यह काम मेरे वश का नहीं।

सेठ सोच-विचार में पड़ गया। सोचने लगा—गुनाह बेलज्जत हो रहा है। पाप किया और कुछ लाभ भी न हुआ।

इस घटना का पता पाकर सुमति ने धवल सेठ के पास जाकर कहा—सेठजी ! विषयान्ध होकर धर्म-अधर्म एवं नीति-अनीति के भेद को भुला देना उचित नहीं। आखिर तो आपको भी परलोक जाना पड़ेगा। थोड़ा विचार तो करो। श्रीपालजी की पत्नियां सामान्य कुल की नहीं—राजकुल की हैं। वे अपने सतीत्व

का त्याग नहीं कर सकतीं। फिर क्यों पापों की गठरी सिर पर लाद रहे हो।

इस प्रकार समझाने पर भी धवल सेठ को सद्बुद्धि नहीं उपजी। कामान्ध पुरुष लज्जा और कुलीनता को ताक में रख देता है। उसका विवेक भ्रष्ट हो जाता है। एक बार वह स्वयं रानियों के पास जा पहुँचा और बोला—क्यों अब तक आर्त्तध्यान कर रही हो? यह जिंदगी इस प्रकार नष्ट करने के लिए नहीं है। प्राप्त सुख को लात मारने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। मेरे यहां धन का खजाना भरा पड़ा है। आराम से रहो और उसका उपभोग करो।

निर्लज्जता और धृष्टता की हद हो गई। सेठ की पापपूर्ण बात सुन कर दोनों रानियों ने कहा—सेठजी, आप हमारे धर्मपिता हैं। हमारे प्रति आपके मन में दुर्भावना होना, आपको शोभा नहीं देता। आप अपने चित्त से पापमय विचारों को दूर कर दीजिए। हम धर्म के पथ से च्युत होने वाली नहीं हैं।

भाइयो! जिसका हृदय कामोन्माद से मतवाला हो जाता है, अच्छे से अच्छा उपदेश भी उस पर असर नहीं करता। धवल सेठ की बुद्धि जब ठिकाने न आई तो श्रीपालजी की दोनों पत्नियों के समक्ष एक विकट समस्या उपस्थित हो गई। वह अपने शील की रक्षा का उपाय सोचने लगीं। जब दूसरा कोई भी

देवी के विकराल क्रोधपूर्ण रूप को देखते ही धवल के छक्के छूट गए। वह भय से पीपल के पत्ते के समान थर-थर कांपने लगा। इन्द्रियों का गुलाम, विषय का कीड़ा और प्राणभीरू धवल सेठ उसी समय रानियों के पैरों में गिर पड़ा और गिड़-गिड़ा कर कहने लगा-क्षमा करो देवियों ! क्षमा करो। मैं विकारान्ध होकर विवेक खो बैठा था। शील की मूर्त्तियों ! मैं अपने अपराध के लिए पश्चात्ताप करता हूँ।

रानियों ने कहा–सेठ, तुम हमारे धर्म के पिता हो। बुरे विचार रखोगे तो तुम्हारा पाप ही तुम्हें खा जाएगा। मत समझो कि भौतिक बल ही सब कुछ है। उसकी अवहेलना करके कोई सुखी नहीं हो सकता।

राम काहि मारे नहीं, मारे सो नहीं राम।
आपो आप मर जाएगा, कर कर खोटा काम॥

भाइयो ! ईश्वर किसी को नहीं मारता। यह तो मनुष्य के कुकर्म ही हैं जो उसे मारते हैं। खोटे काम करने वाला स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

सेठ क्षमायाचना कर के चला गया। तत्पश्चात् चक्रेश्वरी देवी ने रानियों से कहा–बेटियों ! तुम्हारे पति बहुत आनन्द में हैं। वे समुद्र में गिरते ही मगर की पीठ पर आरूढ़ होकर समुद्र के किनारे सुरक्षित पहुँच गए हैं और एक राजकुमारी के साथ उनका विवाह हो गया है।

इतना कह कर देवी अन्तर्धान हो गई, परन्तु श्रीपाल के कुशल वृतान्त को सुन कर दोनों रानियों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उनकी चिन्ता बहुत कुछ दूर हो गई। जाते समय देवी ने दोनों को एक-एक माला दी थी। माला की महिमा यह थी कि जब तक वह गले में रहेगी, तब तक कोई दुष्ट-व्यभिचारी उन्हें सता नहीं सकेगा। देवी उन्हें शीघ्र ही पति से मिलने का भी आश्वासन देती गई थी। इस प्रकार दोनों रानियों निश्चिन्त और निर्भय होकर भविष्य की आशा पर समय व्यतीत करने लगी।

मगर इतनी शिक्षा मिलने पर भी धवल सेठ की हृदयगत वासना निर्मूल न हुई। अतएव एक बार वह महिला का रूप धारण करके रानियों के पास पहुँचा, मगर मालाओं के प्रभाव से उसका कुछ भी जोर न चला। उसे अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ। पाप भावना के कारण उसके जहाज किधर के किधर चलने लगे। चलते-चलते वह कंकू द्वीप में जा पहुँचा। सेठने जहाज वहीं रुकवा दिए।

धवल मूल्यवान् वस्त्राभूषण धारण कर और बहुमूल्य भेंट लेकर वहां के राजा से मिलने गया। मगर वहां पहुँच कर उसने जो कुछ देखा, उससे वह चकित रह गया। उसके हाथ पैर सुन्न हो गए। कलेजा धड़कने लगा। चेहरा एकदम उतर गया। उसकी अवस्था ऐसी हो गई जैसे मृत्यु को सन्निकट जान कर किसी की हो जाती है। उसने देखा श्रीपालजी वहां विराजमान हैं।

जैसे उलूक सूर्य को और चूहा बिलाव को नहीं देख सकता उसी प्रकार धवल सेठ श्रीपालजी को न देख सका। कहा भी है-

कुंजर को देख जैसे रोष करि भौंके श्वान,
रोष करे निर्धन विलोकि धनवन्त को।
रैन के जगैया को विलोकि चोर रोष करे,
मूढ मति रोष करे सुनतां सिद्धान्त को।
हंस को विलोकी जैसे काग मन रोष करे,
अभिमानी रोष करे देखत महंत को।
सुकवि को देख जैसे कुकवि मन रोष करे,
त्यों ही मन रोष करे दुष्ट देख सन्त को।

भाइयो ! हाथी को देख कर कुत्ता भुस-भुस करता है। निर्धन मनुष्य धनवान् को देख कर जलता है कि इस के पास इतना धन कैसे आगया। हंस को देख कर कौवे को जलन होती है कि मैं तो ऐसा काला-कलूटा हूँ और यह इतना श्वेत क्यों है ? अभिमानी अपने सामने किसी के महत्त्व को नहीं देख सकता है। तो उसके दिल में जलन पैदा हो जाती है। अहिंसा के सिद्धान्त को सुनते ही हिंसक भड़क उठता है। सुकवि की सुन्दर रसमयी कविता को देख कर कुकवि के अंग-अंग में अंगारे दहकने लगते हैं। इसी प्रकार पापी और दुष्ट हृदय पुरुष सन्त को देख कर जलते हैं।

धवल सेठ श्रीपालजी को देख कर भय और ईर्षा से अभिभूत हो गया। परन्तु राजा ने श्रीपालजी के हाथ से सेठ को पान दिलवाया। पान देते समय दोनों की आंखें चार हुई कि धवल सेठ ने लज्जित होकर गर्दन नीची करली।

भाइयो! पाप बड़ा दुर्बल होता है। जिस मनुष्य के मन में पाप का वास होता है, उसका हृदय अत्यन्त कमजोर हो जाता है। धवल सेठ की पापी आत्मा गिर चुकी थी। वह अपने को असहाय अनुभव कर रहा था। किन्तु जब उसे पता चला कि श्रीपाल तो यहां के राजा के जामाता हैं। तब तो उसकी दशा वर्णनातीत हो गई। उसका खून सूख गया। वह बुरी तरह घबरा गया। सोचने लगा-हाय, मैंने इसे समुद्र में फैंका था पर यह पुण्योदय से बच गया। मेरी कोई युक्ति काम नहीं आई। कितने दुर्भाग्य की बात है कि मेरे जहाज अनजान में ही यहां आ पहुँचे कौन जाने मेरा भविष्य क्या है। मेरी फूटी तकदीर में न मालूम क्या लिखा है।

इस प्रकार मन ही मन पश्चात्ताप और खेद करता हुआ धवल वापिस आया। अब वह क्या करता है और किस प्रकार उसका बचाव होता है, यह सब आगे सुनने से विदित होगा।

केन्टोनमेन्ट बैंगलोर
१३-१०-५१

ओली तप

[७]

भाइयो !

आपके समक्ष चतुर्थ अंग श्रीसमवायांग सूत्र का वर्णन विवेचनात्मक शैली से चल रहा है चौवीसवां समवाय सुनाया जा चुका है। आज पच्चीसवां समवाय प्रारंभ किया जा रहा है।

आपको विदित है कि प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव और चरमतीर्थङ्कर श्रीमहावीर के शासन के मुनि पांच महाव्रतों का पालन करते हैं। इनमें से प्रत्येक महाव्रत का यथोचित रूप से पालन करने के लिए पांच-पांच भावनाएँ बतलाई गई हैं, पांचों महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ हैं। व्रतों के पालन करने वाले को इन भावनाओं का भी पालन करना चाहिए।

प्रथम अहिंसा महाव्रत की पांच भावनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) ईर्यासमिति—देखभाल कर चलना।

(२) मनोगुप्ति—मन को पाप से गोपन करके रखना। मन

पाप की ओर चला गया तो अहिंसाव्रत दूषित हो जायगा। अतः साधु मन में भी किसी के प्रति दुर्विचार ना आने दे।

(३) वचनगुप्ति—वचन को काबू में रखना। मौन रहना अथवा प्रयोजन होने पर प्रशस्त वचनों का ही प्रयोग करना, हिंसाकारी वचन न बोलना। वचन के द्वारा भी जीवों की घात हो जाती है। 'इसको मार दो, काट दो' इत्यादि वचन हिंसाजनक हैं। अहिंसाव्रती साधक को ऐसे वचन का कदापि प्रयोग नहीं करना चाहिए जिससे किसी जीव को कष्ट पहुँचता हो।

(४) आलोकित भाजन भोजन—साधु जो भी आहार-पानी लावे, उसे बिना देखे-भाले काम में न ले। बिना देखे-भाले काम में लेगा तो हिंसा हो जायगी। बिना देखे कैसे पता चलेगा कि इसमें कोई मक्खी, मच्छर, कीड़ा, मकोड़ा गिर गया है। यद्यपि साधु अचित्त जल या धोवन ही लेते हैं और देखभाल कर लेते हैं, फिर भी अपने स्थान पर लाकर उसे छानना चाहिए।

साधु प्रान्त-प्रान्त में घूमता है। गृहस्थ के घर से ही उसे आहार-पानी लेना पड़ता है। कई जगह भोजनशाला में पूरा प्रकाश नहीं होता। और फिर भोजन बनाने वाली बाई को घूंघट डालना पड़ता है। इस प्रकार अंधेरे में और भी अंधेरा हो जाता है। बाई ठीक तरह देख नहीं पाती। ऐसी स्थिति में जीव-जन्तु का पड़ जाना आश्चर्यजनक नहीं है। अतएव साधु को चाहिए

कि वह जो भी आहार-पानी लावे, उसे भली-भांति देख ले। आहार-पानी लेते समय पात्र का भी निरीक्षण कर ले।

पूज्य खूबचन्द्रजी म० ने एकबार बतलाया था कि एक दिन दाल में नाक की नथ निकली। गुरु महाराज ने पूछा-आज किस-किस के यहां से आहार आया था ? जब मालूम हुआ तो साधुओं ने जाकर पूछा-बाई, तुम्हारी कोई चीज खो तो नहीं गई है ?

वह बोली—महाराज, विस्मृति के कारण मेरी नथ दाल के वर्त्तन में चली गई थी।

इस प्रकार वह नथ उसे सौंप दी गई। तात्पर्य यह है कि देखे बिना खाने-पीने से कई प्रकार के अनर्थ होने की सभावना रहती है, अतएव भोजन पानी को तथा पात्र को देखकर ही काम में लाना चाहिए।

(५) पांचवीं भावना आदाननिक्षेपण समिति है। साधु को आवश्यक वस्तु लेने और रखने की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु यतनापूर्वक ही लेना और यतनापूर्वक ही रखना चाहिए। ऐसा करने से हिंसा से बचाव होता है।

इस प्रकार अहिंसा महाव्रत की रक्षा के लिए यह पांच भावनाएँ बतलाई गई हैं।

दूसरे सत्य महाव्रत की रक्षा के लिए भी पांच भावनाएँ आवश्यक हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) जिसे सत्यमहाव्रत को निर्मल रखना है, उसे सर्व-प्रथम यह ध्यान रखना चाहिए कि बिना विचारे भाषण न किया जाय। कभी किसी को कहते आपने सुना होगा-'क्यों साहब, आपने तो ऐसा कहा था; परन्तु ऐसा हुआ तो नहीं।' इस प्रकार बिना विचारे कह देने वाले को उपालंभ सहना पड़ता है उसका वचन मिथ्या हो जाता है।

किसी ने किसी को एक या दो बार आवाज दी। उसने सुना नहीं। जब वह सामने आया तो आवाज देने वाला आवेश में आकर कहता है-क्या बहिरे हो गए हो ? सौ बार चिल्लाया; सुना ही नहीं।

किसी ने पांच-दस मिनिट किसी की प्रतीक्षा की। वह नहीं आया। जब आया तो उसे कहा गया-घण्टों राह देखने पर भी नहीं आए।

इस प्रकार के वचन कहने से भी मिथ्या भाषण का दोष लगता है। अतएव सोच-समझ कर ही वचनों का प्रयोग करना चाहिए।

यद्यपि यह जबान बत्तीसी के अन्दर है और कंठ में है, परन्तु कहा है—

थे बत्तीस मैं एकली, नारी नाम धराय।
जरा-सा टेढ़ा बोलूँ तो बत्तीसी खिर जाय॥

जीभ थोड़ा-सा भी अंटसंट बोल देती है तो मनुष्य को बत्तीसी से हाथ धोना पड़ता है। अतएव सदैव सोच-विचार कर बोलना चाहिए और बोलने से पहले समझ लेना चाहिए कि मेरे बोलने का क्या परिणाम होगा ? जिस पर जितना अधिक उत्तरदायित्व होता है, उसे बोलने में उतनी ही सावधानी बरतनी पड़ती है। आज ऐसे लोग हैं जिनके मुख से निकले हुए एक-एक शब्द में विश्व, देश, जाति एवं समाज का हित और अहित छिपा रहता है। तभी तो ऐसे लोगों का शब्द-शब्द रिकार्ड कर लिया जाता है। वे ऐसा-वैसा कोई शब्द कह देते हैं तो दुनिया भर में तहलका मच जाता है! यह वचन का महत्त्व है। अतएव बुद्धिमान् साधक को सोचे-समझे बिना भाषण नहीं करना चाहिए।

(२) दूसरा भावना यह बतलाई गई है कि साधु को क्रोध के वशीभूत होकर नहीं बोलना चाहिए। जब क्रोध का आवेश होता है तो जीभ पर अंकुश नहीं रहता। अतएव कुछ भी मुख से निकल जाता है, इससे सत्य-महाव्रत दूषित होता है।

(३) तीसरी भावना है—लोभपूर्वक भाषण न करना। जहां लोभ है वहां सत्य नहीं टिक सकता। सत्य की रक्षा के लिए लोभपूर्वक भाषण करना वर्जनीय है।

(४) चौथी भावना यह है कि साधु को भयपूर्वक भाषण

नहीं करना चाहिए। जिसके हृदय में भय समाया रहता है, वह झूठ बोल देता है। जो निर्भय होता है, वही सत्य पर दृढ़तापूर्वक कायम रह सकता है। अतएव सत्य का पालन करने के लिए साधक को निर्भय बनना चाहिए।

(५) पांचवीं भावना यह बतलाई गई है कि सत्यव्रत की रक्षा के लिए साधु को हास्य के वशीभूत होकर नहीं बोलना चाहिए। हँसी-मजाक में प्रायः असत्य का सेवन किया जाता है। साधु को हँसी-मजाक से प्रयोजन भी क्या है?

यह पांच भावनाएं सत्य महाव्रत की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

तीसरा अदत्तादानविरमण नामक महाव्रत है, अर्थात् साधु को कोई भी वस्तु दिये बिना नहीं लेना चाहिए। साधु जो भी उपकार काम में लाता है, वह सब गृहस्थ द्वारा प्रदत्त ही होने चाहिए। इसकी पांच भावनाएं इस प्रकार हैं:—

(१) साधु को रहने के स्थान की उसके स्वामी से याचना करना चाहिए। विहार करते समय या अन्य किसी कारण से रास्ते में बैठना पड़े तो शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा लेना चाहिए। भगवतीसूत्र में उल्लेख है कि—शक्रेन्द्र महाराज ने भगवान से कहा है कि मैंने अपनी भूमि पर आर्यपन से विचरण करने वालों को आज्ञा दी है। अतएव जिस भूमि का कोई मालिक न हो या

समीप में न हो, ऐसे जंगल आदि स्थानों में शक्रेन्द्रजी की आज्ञा ले लेना ही उचित है।

(२) मालिक से जितनी भूमि की आज्ञा प्राप्त की हो उतनी ही काम में लाना चाहिए, उससे अधिक नहीं। वह भूमि गृहस्थ मालिक को बतला देना चाहिए।

भाइयों ! आज भी बिना पास-पोर्ट लिए एक देश का नागरिक दूसरे देश की भूमि पर पांव नहीं रख सकता। रखता है तो अपराधी होता है। तब साधु के लिए तो यह अपराध होना ही चाहिए। यदि शासन साधु को कहीं जाने से रोक दे तो उसे नहीं जाना चाहिए, परन्तु समझाने का प्रयत्न करना चाहिए। एक बार महासती श्री पार्वतीजी ने नाभा-नरेश को समझाया था। उन्होंने नरेश से पूछा—जैन साधु-साध्वियों को आपकी रियासत में प्रवेश करने का निषेध क्यों है ?

असल में किसी धर्मद्वेषी कर्मचारी ने राजा के कान भर दिए और उसकी बातों में आकर उसने आदेश जारी कर दिया कि जैन साधु रियासत में न आवें। जब महासतीजी ने उसे समझाया तब उसने अपनी भूल स्वीकार की।

भाइयो ! पांच प्रकार की चोरी मानी गई है—(१) देव अदत्त-देव की आज्ञा बिना कोई वस्तु लेना। (२) गुरु-अदत्त गुरु की अनुमती लिए बिना कोई कार्य करना। (३) राजा-अदत्त

राजा की आज्ञा से विरुद्ध उसकी सीमा में जाना । (४) गाथा-पति अदत्त-गृहस्थ की आज्ञा बिना उसकी किसी वस्तु को ले लेना। (५) स्वधर्मी-अदत्त-अपने साथी साधुओं की आज्ञा के बिना उनकी वस्तु ग्रहण करना ।

(३-४) स्वयं मर्यादा को जानने के बाद ही उस स्थान में रहना यह तीसरी भावना है । और स्वधर्मियों का अवग्रह याचना चौथी भावना है ।

(५) सब स्वधर्मियों के लिए जो आहारादि लावे; उसे आचार्यादि की आज्ञा लेकर ही काम में ले । यह पांचवी भावना है ।

इस प्रकार व्रत की रक्षा के लिए इन भावनाओं का पालन करना आवश्यक है । गौतम स्वामी चार ज्ञान के धारक थे और बेले-बेले पारणा करते थे, परन्तु वे भी लाए हुए आहार को भगवान् को दिखलाया करते थे । यद्यपि भगवान् अपने केवल ज्ञान से बिना दिखलाए भी जानते थे, तथापि शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह गुरु को अवश्य दिखलावे ।

साधु का चौथा महाव्रत ब्रह्मचर्य है । ब्रह्मचर्य में वीर्य की रक्षा तो गर्भित है ही, साथ ही ब्रह्म अर्थात् आत्मा में रमण करना भी सम्मिलित है । इस व्रत की रक्षा के लिए भी पांच भावनाएँ बतलाई गई हैं:—

(१) साधु को ऐसे स्थान और आसन का उपयोग नहीं करना चाहिए जो स्त्री, पशु या नपुंसक से युक्त हो। जहां बिल्ली का वास हो वहां चूहा निरापद नहीं रह सकता। उसका विनाश अवश्यंभावी। है इसी प्रकार स्त्री के संसर्ग वाले स्थान में यदि साधु का निवास होगा तो उसका ब्रह्मचर्य भंग हो जाएगा।

(२) ब्रह्मचर्य को स्त्रियों की कथा-वार्त्ता-चर्चा नहीं करना चाहिए। जैसे नीबू या इमली का नाम लेते ही मुँह में पानी आ जाता है, इसी प्रकार स्त्रीकथा से साधु के चित्त में विकार आ जाता है।

(३) ब्रह्मचर्य महाव्रत की रक्षा के लिए साधु को स्त्रियों की इन्द्रियों को बार-बार नहीं देखना चाहिए। किसी की आंखें आई हों और वह बार-बार सूर्य के सामने देखे तो अधिक विकार आंखों में उत्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार साधु यदि स्त्रियों के अंगोपांगों को देखेगा तो उसके चित्त में विकार उत्पन्न हुए बिना न रहेगा।

(४) साधु ने यदि पूर्वावस्था–गृहस्थवास में स्त्री के साथ क्रीड़ा की है तो उसे अब उसका स्मरण नहीं करना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण प्रसिद्ध है जो इस प्रकार है—

एक बुढ़िया के घर चार राहगीर ठहरे। प्रातःकाल जल्दी ही बुढ़िया ने बिलोवना–दधिमंथन किया। लापरवाही के कारण

के कारण दहि के साथ एक सर्प भी मथ गया। मुसाफिर जाने लगे तो बुढ़िया ने उनसे कहा-बेटा, छाछ तैयार है। थोड़ी-थोड़ी छाछ पीकर जाओ। मुसाफिरों ने बुढ़िया का प्रेम देख कर छाछ पी ली और अपनी राह पर चले गए। उन के जाने के बाद बुढ़िया को पता चला कि दहि में सांप था। बुढ़िया बहुत पश्चाताप करने लगी। मगर मुसाफिर जा चुके थे। पश्चाताप के सिवाय करने को कुछ रहा नहीं था। वह सोच रही थी-जहर चढ़ जाने से बेचारे रास्ते में ही कहीं मर जाएँगे।

कुछ दिनों बाद वही चारों लौटते समय पुनः उस बुढ़िया के घर जा पहुँचे। बुढ़िया उन्हें देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुई। कहने लगी-बड़े भाग्यशाली हो भैया तुम लोग!

मुसाफिरों ने कहा-सो कैसे मां जी ?

तब बुढ़िया ने पिछला सारा किस्सा सुनाया और कहा-मैं बहुत दुःख मना रही थी तुम्हारे लिए। आज तुम्हें जीवित देख कर मेरे हर्ष का पार नहीं है। बेटा, तुम लोग जुग-जुग जीओ।

मगर बुढ़िया का आशीर्वाद काम नहीं आया। जैसे ही उन्होंने स्मरण किया कि हमने जहरीली छाछ पी ली थी, उनके शरीर पर जहर का असर होने लगा और उसी समय उनका प्राणान्त हो गया।

इसी प्रकार साधु यदि पूर्वभुक्त भोगों का स्मरण करेगा तो

इस प्रकार की हितकर सलाह भी धवल सेठ को नहीं रुचि। उसके हृदय में पापवासना इतनी गहरी पैठी हुई थी कि उसने इस पर ध्यान नहीं दिया। उसी समय उसका कुमति मित्र आ पहुंचा और बोला—सेठजी, हताश होने वालों को कभी बड़ी सफलता नहीं मिला करती। उत्साह रक्खो और इस वार श्रीपाल को जान से ही मार डालो। फिर वह कैसे जिंदा हो जाएगा?

उस समय भांडों की एक टोली वहां नजदीक ही ठहरी थी। कुमति मित्र उस टोली के पास पहुंचा और कहने लगा—भाइयो! तुम लोग थोड़े-थोड़े पैसों के लिए मारे-मारे फिरते हो। मैं तो मालामाल होने की तरकीब बतलाता हूँ। तुम लोग धवल सेठ के पास चलो। तुम्हें इतनी कमाई होगी कि जिंदगी में कभी न हुई होगी।

भांडों को पैसा चाहिए था। वे धवल सेठ के पास गए। तब कुमति मित्र ने कहा—यदि तुम हमारा काम कर दोगे तो एक लाख सोना-मोहरें तुम्हें देंगे।

भाइयो! उस पीली चीज को देख-सुन कर सब का मन विगड़ जाता है। फिर वे तो संस्कारहीन भांड थे। एक लाख मोहरों की बात सुनते ही आसमान में उड़ने लगे। उनमें जो मुखिया था, वह कहने लगा—बतलाइए, आपका क्या काम करना होगा? अगर हमारे वश का होगा तो अवश्य ही करेंगे।

धवल सेठ—यहां के राजा के पास श्रीपाल नाम का एक आदमी रहता है। उसे तुम भांड बना लो तो तुम्हें मोहरें मिल जाएँगी।

भांड बोला—सेठजी, यह काम करना तो हम खूब जानते हैं। आप निश्चिन्त रहिए और समझ लीजिए कि आपका काम हो चुका। आप तो एक लाख मोहरें तैयार रखिए।

भांड चले गए। उन्होंने श्रीपाल को पहचान लिया। फिर वे लोग राजदरबार में पहुंचे। बोले–हुजूर, हुकम हो तो हम खेल दिखला कर आप सब का चित्त प्रसन्न करें। राजा ने अनुमति दे दी। भांडों ने राजमहल के सामने, मैदान में, खेल करने का आयोजन किया। खेल शुरु हो गया और राजा तथा दूसरे लोग, जिनमें श्रीपाल भी थे, खेल देखने लगे। परन्तु अकस्मात् एक भाड श्रीपाल के पास आया और उनके गले से चिपक गया। दूसरा दौड़ा और उनका हाथ पकड़ कर कहने लगा–मेरे प्यारे बेटे! इतने दिनों तक तुम कहां रहे? ऐसा भी क्या क्रोध कि घर वालों को छोड़ कर चल दिए और फिर आने का नाम ही नहीं लिया।

इसके बाद और कई भांड वहां आ पहुंचे। कोई उन्हें अपना भाई, कोई भानेज, कोई पोता और जमाई बतलाने लगा। भांड झूठ बोलने के आदी होते हैं। वे सब श्रीपाल के कुटुम्बी

बन गए। श्रीपाल की समझ में ही न आया कि यह सब क्या मामला है। वे विस्मित और चकित से खड़े रह गए। सोचने लगे-यह भी शायद इनका कोई खेल हो। अभी खत्म हो जाएगा।

मगर यह खेल भांडों का नहीं, चतुर और धूर्त्त वणिक् धवल सेठ का था और वह जल्दी समाप्त होने वाला नहीं था। भांड उन्हें अपनी टोली की ओर खींचकर ले जाने लगे। यह दृश्य देखकर राजा चिन्ता में पड़ गया। उसने गर्ज कर कहा-अरे, क्या गुस्ताखी कर रहे हो ? मेरे जामात से क्यों चिपट रहे हो ? क्या तुम्हारा काल नजदीक आ रहा है ?

भांड बोले-हुजूर, गुस्ताखी माफ हो। बहुत दिनों में मिला है। इसी कारण इससे चिपटना पड़ा।

राजा-यह तुम्हारा कौन है ?

एक बूढ़ा भांड बोला-अन्नदाता ! मेरे दो लड़के थे। एक का नाम गोवर्धन और दूसरे का नाम श्रीपाल था। दोनों ही कुलक्षणी और कपूत थे। उनमें से यह श्रीपाल आपके पास आ गया है। बहुत दिनों में आज मिला है। दूसरा परलोक सिधार गया है। हुजूर; आपके दरबार में आने से मेरी तकदीर खुल गई जो मेरा बेटा मिल गया। इस पर मैं अपना सभी कुछ निछावर करने को तैयार हूँ।

यह सुनकर श्रीपाल चकित रह गए। राजा भी आश्चर्य में

पड़ गया। उसके हृदय में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे। सोचने लगा—मैं बुरी तरह ठगा गया। भयानक धोखे में आ गया। श्रीपाल क्या वास्तव में भांड का लड़का है! तब तो गजब हो गया। मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। मेरी बेटी का जीवन नष्ट हो गया।

आखिर राजा ने श्रीपाल से कहा—तुमने अपने आपको चम्पा नगरी का राजा बतलाया है और यह क्या मामला है? क्या तुम भांड के लड़के हो?

श्रीपाल के क्रोध की सीमा न रही। विचार आया—इन बदमाश भांडों को तलवार के घाट उतार दूं! फिर सोचा—ऐसा करने से लोगों का सन्देह पक्का हो जाएगा और मेरे सिर पर कलंक रह जाएगा। अतएव उतावल न करना ही अच्छा है। मालूम होता है, कोई भयानक षड्यन्त्र रचा गया है। मगर उसके खत्म होने में और सत्य प्रकट होने में देर नहीं लगेगी। फिर इन कर्मों का नाटक भी तो देख लेना चाहिए! देखूँ, कर्म क्या-क्या रंग दिखलाते हैं।

श्रीपाल ने राजा से कहा—मैं क्या हूं और क्या नहीं हूं, यह देखना है तो मेरे हाथ में एक तलवार दीजिए और फिर अपनी सारी सेना बुला लीजिए। मेरी तलवार ही इस बात का फैसला करेगी कि मैं भांड का पुत्र हूं अथवा राजपुत्र हूँ। और मैंने कब

आपसे आपकी कन्या की याचना की थी ? यह तो वही बात हुई कि पहले भूख से व्याकुल होकर किसी के घर भोजन कर लिया और फिर पूछने लगे कि तुम्हारी जाति क्या है। आप भी यही हाल कर रहे हैं।

श्रीपाल फिर कहने लगे—रिश्ता होने के बाद जाति या कुल पूछने का क्या अर्थ है ? समझ लीजिए कि मैं क्षत्रिय नहीं हूं, भांड हूं और भांडो का ही मेरा परिवार है ! अब आप क्या करना चाहते हैं ?

श्रीपाल के अन्तिम वाक्य सुनकर राजा क्रोध से अन्धा हो गया। उसने सोचा—यह वास्तव में ही भांड मालूम होता है। स्वयं अपने को भांड कह रहा है। प्रकट में वह बोला—तूने धोखा देकर मेरी कन्या का पाणिग्रहण किया है। इस धृष्टता का फल अभी चखाता हूँ।

इतना कहकर राजा ने जल्लाद को बुलवाया और आज्ञा दे दी कि इसे अभी शूली पर चढ़ा दो।

पास ही खड़े दीवान ने यह आज्ञा सुनी तो कहा—महाराज ! आवेश की स्थिति में कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं करना चाहिए। शान्ति से काम लीजिए। उतावल से काम बिगड़ जाता है। सोच-विचार किये बिना जो काम किया जाता है, उसके लिए पश्चात्ताप करना पड़ता है।

राजा ने कहा—सोचने की गुंजाइश ही कहां रह गई है ? यह अपने मुंह से भांड होना स्वीकार कर रहा है। अब इसके सिवाय चारा ही क्या है ? और मैं उन ज्योतिषियों को भी नहीं छोड़ूंगा जिन्होंने कहा था कि वृक्ष के नीचे सोने वाले के साथ कन्या का विवाह होगा। उन्हें भी शूली पर चढ़ाए बिना नहीं रहूंगा।

श्रीपालजी भी चिन्ता में डूब गए। सोचने लगे–प्रभो ! यह सब क्या हो रहा है ? यह कर्म कैसा-कैसा खेल दिखला रहे हैं। मैं अपनी राह आता हूँ, अपनी राह जाता हूं। पहले गले पड़ कर अपनी लड़की देते हैं और फिर दुश्मन बन जाते हैं। इसमें मेरा क्या अपराध है ? मगर इन लोगों को भी अपराधी ठहराना वृथा है। असल में तो मनुष्य अपने किये कर्मों का ही फल पाता है। दूसरे लोग तो निमित्त मात्र हैं–कर्मों की कठ-पुतली हैं। इन्हें भी क्या दोष दिया जाए। जीवन में कैसे-कैसे संघर्षों का सामना करना पड़ा है। जब से जन्म लिया तभी से मुसीबतों ने पीछा पकड़ रक्खा है। छुटकारा ही नहीं मिलता। आखिर कृत कर्मों का विपाक पूरी तरह भोगे विना छुटकारा नहीं मिल सकता।

इधर यह चल रहा था, उधर दासी यह समाचार पाकर राजकुमारी गुणमाला के पास पहुँची। बोली—बाईजी, आप यहां

महल में बैठी आनन्द कर रही हैं, किन्तु पता है राजसभा में क्या हो रहा है ?

गुणमाला ने किंचित् चिन्तित होकर कहा—मुझे कुछ नहीं मालूम। क्या हो रहा है ?

दासी—क्या कहूं, समाचार बड़ा ही भीषण है।

गुणमाला—फिर भी कह तो सही। मेरे मन में चिन्ता व्याप रही है।

दासी—महाराज ने कुंवर साहब को शूली पर चढ़ाने का हुक्म दे दिया है।

यह हृदयवेधी समाचार सुनकर गुणमाला ने कहा—ऐसी क्या बात हो गई ? उनसे पहले मैं शूली पर चढ़ूंगी। चल, मैं महाराज के पास चलती हूं।

गुणमाला महाराज के पास आई। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। संकुचित होती हुई वह महाराज से कहने लगी—पिताजी ! किसी निरपराध के प्राणों से खिलवाड़ करना राजा का धर्म नहीं है। इस समय आवेश में आकर कुछ कर बैठेंगे तो बाद में सँभालना कठिन हो जाएगा। आपके जामाता कोई साधारण पुरुष नहीं है। वह राजपुत्र हैं, राजजामाता हैं और स्वयं भी शक्तिसम्पन्न हैं। अतएव विचार कीजिए कि आप कर क्या रहे हैं ?

राजा को यों ही एक सौ छह डिग्री बुखार चढ़ा हुआ था, उसे अपनी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाने का खेद था। वह सोच रहा था कि मेरे कुल में कलंक लग गया है। यह आघात कोई साधारण आघात नहीं था। इसके कारण वह एकदम क्रुध और हतबुद्धि हो गया था। अतएव गुणमाला की बात पर भी उसने ध्यान नहीं दिया, वह अपने निर्णय पर अटल बना रहा।

गुणमाला को पूरी बात का पता नहीं था। अतएव वह वहां से अपने पति श्रीपाल के निकट गई। उनसे पूछा-प्राणनाथ! अचानक क्या घटना घटित हो गई ? यह तूफान कैसे आ गया ?

श्रीपाल बोले-प्रिये ! चिन्ता न करो। सचमुच ही यह तूफान है और तुम जानती हो कि तूफान कोई भी स्थायी नहीं होता-आता है और चला जाता है। महाराज समझ रहे हैं कि मैं राजपुत्र नहीं, भांड हूँ।

गुणमाला-प्रिय ! इस भ्रम को दूर करना तो आपके बाएँ हाथ का खेल है। ऐसा चमत्कार दिखलाइए कि उनका भ्रम दूर हो जाए और जिन्होंने यह जाल रचा है, उन्हें भी अच्छी शिक्षा मिल जाए।

श्रीपाल-महाराज तुम्हारे पिता हैं, अतः मेरे भी पिता हैं। मैं नहीं चाहता कि मेरे द्वारा ऐसा कोई कार्य हो जिससे उनका अपमान हो। किन्तु विवश होना पड़ेगा तो अपने प्राणों की रक्षा

के लिए नहीं, वरन् सत्य को प्रकाशित करने के लिए ऐसा ही कोई उपाय करूँगा। मेरी तलवार मेरी कुलीनता की साक्षी होगी। मगर यह अन्तिम उपाय है। इससे पहले एक काम करो, मेरे विषय में अगर तुम लोगों को निर्णय ही करना है तो समुद्रतट पर जाओ। वहां जहाज आए हुए हैं। उनमें मेरी पत्नियां मौजूद हैं। उनके पास जाकर मेरे विषय में पूछताछ कर लो। तब तुम सब को विश्वास हो जाएगा कि मैं कौन हूँ, क्या हूं।

गुणमाला फिर महाराज के पास पहुँची। इस बार उसकी आंखों में आंसू नहीं थे। उसका चेहरा तेज से चमक रहा था। उसने महाराज से कहा-पिताजी, मैं समुद्रतट पर जाकर अभी वापिस लौटती हूँ। तब तक आप शान्त रहें। किसी को कोई दंड न दें। मेरा विश्वास है कि यह सब दुष्टों द्वारा फैलाया गया भयानक जाल है। इसके छिन्नभिन्न होने में अधिक विलम्ब नहीं लगेगा।

राजा ने गुणमाला से कहा-अच्छा बेटी, जब तक तू नहीं आएगी, श्रीपाल को शूली पर नहीं चढ़ाया जाएगा। मगर ध्यान रखना, जल्दी लौटना।

गुणमाला उसी समय समुद्र की ओर रवाना हो गई। वहां पहुँच कर उसने ज़ोर-ज़ोर से रत्नमंजूषा और मदनसेना का नाम लेकर पुकारना शुरु किया। किसी को अपना नाम लेकर

पुकारते सुना तो दोनों रानियों को आश्चर्य हुआ। सोचा-कोई हमारा हितैषी होगा, अन्यथा इस अज्ञात प्रदेश में कौन इस प्रकार हमें पुकारता ?

दोनों रानियां जहाज से बाहर निकलीं। गुणमाला की वेषभूषा देख कर उन्हें सान्त्वना मिली। उन्होंने पूछा-बहिन, आप कौन हैं और हमें कैसे जानती हैं ? हमें आवाज देने का क्या प्रयोजन है ?

गुणमाला ने कहा—आपके प्रश्नों का उत्तर मैं बाद में दूँगी। यह विश्वास कीजिए कि मैं भी आपकी एक बहिन हूं। मैं श्रीपालजी के विषय में आपसे पूछना चाहती हूँ। आपको जो विदित हो, वह बतलाइए।

तब दोनों ने गुणमाला से पूछा—बहिन ! यह तो बतलाओ कि क्या आपको वे मिले हैं ? उनसे आपकी पहचान है ? वे इस समय कहां हैं ?

गुणमाला—वे समुद्र तैर कर यहां आए थे। आकर सागर के तट पर एक वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगे। ज्योतिषियों के कथनानुसार मेरे पिता, जो यहां के राजा हैं, ने उन्हें अपने पास बुलवाया और मेरे साथ उनका विवाह हो चुका है। वे अभी यहीं हैं। इस प्रकार कह कर उसने पूर्वोक्त भांडों वाला समग्र वृत्तान्त कह सुनाया और अन्त में यह भी कहा कि उनके कहने से ही मैं

आपसे मिलने आई हूं। अगर आप दोनों मेरे साथ चलें तो उनके विषय में फैला भ्रम शीघ्र ही दूर हो जाएगा। मेरा घर आपका ही घर है।

गुणमाला का कथन सुन कर दोनों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वे उत्साह के साथ गुणमाला के साथ चलने को तैयार हो गई। तीनों साथ-साथ राजसभा में पहुंची। तब गुणमाला ने अपने पिता से कहा–पिताजी, आप अपने जामाता के विषय में इनसे अच्छी तरह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

राजा ने उनसे पूछा—श्रीपालजी के विषय में आप क्या जानती हैं? तब रत्नमंजूषा ने कहा—महाराज! हम दोनों राजकुमारियां हैं। हमारा उनके साथ लग्न हुआ है। हम तीनों धवल सेठ के साथ समुद्र में जहाज द्वारा यात्रा कर रहे थे। धवल सेठ के मन में पाप-वासना उत्पन्न हुई और उस पापी ने उन्हें समुद्र में गिर दिया। तत्पश्चात् उसने हमें शील से च्युत करने का भरसक प्रयत्न किया। उसका अत्याचार इतना बढ़ गया कि प्राण दे देने के अतिरिक्त हमारे पास कोई उपाय नहीं रहा। मगर उसी समय शीलसहायक देवता का आगमन हुआ और उसी के द्वारा हमारी रक्षा हुई। सेठ तो न जाने कहां जाना चाहता था, मगर दैवी प्रभाव से हवा ऐसी चली कि उसके जहाज यहां आ पहुंचे। पिछली घटनाओं के आधार पर हमारा निश्चित अनुमान है कि आपके जामाता के विरुद्ध रचे गए षड्यन्त्र में उसी पापी

सिधारे होते और क्यों मुझे पैत्रिक राज्य से वंचित होना पड़ता? काहे को देश-देश भटकना पड़ता और आपके सामने जलील होना पड़ता? क्यों मैं ऐसी स्थिति में आता कि आप भांडों की बात पर विश्वास कर सकें और मेरी बात पर नहीं। इन पाप-कर्मों ने तो मुझे भांडों से भी गया-बीता बना दिया।

राजा अपने विवेकशून्य कृत्य के लिए लज्जित हो गया। उसने कहा—कुंवर साहब, मैं स्वयं ही बहुत लज्जित और दुःखी हूँ। अब इस घटना को भूल जाइए। मुझे अपने किये पर जिंदगी भर पछतावा रहेगा। मैं अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट हुआ हूं। मगर जो कुछ हो चुका है, वह तो हो ही गया।

इस प्रकार कह कर राजा ने श्रीपाल के चित्त का समाधान किया। श्रीपाल भी शान्त और स्वस्थ हो गए।

गुणमाला दोनों रानियों को अपने महल में ले गई थी, श्रीपालजी भी वहां पहुँचे और उनसे मिल कर अत्यधिक सन्तुष्ट हुए। उन दोनों की प्रसन्नता का तो पार ही नहीं था। उनका गया हुआ सौभाग्य वापिस आ गया। उन्होंने अनुभव किया, मानों गए प्राण फिर मिल गए हैं।

श्रीपाल के समुद्र में गिरने के बाद जहाज में जो-जो घटनाएँ घटित हुई थीं वे सब उन्होंने उसे विस्तार-पूर्वक सुनाईं। सुनाते समय उनकी आंखों में आंसू आ गए। गुणमाला भी

अपने आंसू न रोक सकी। मगर सबने यही सोचा—जो होता है, भले के लिए ही होता है।

उधर राजा ने दरबार में पहुंच कर कोतवाल को आदेश दिया—जाओ और उन भांडों को पकड़ कर ले आओ। देखो, कोई भागने न पावे।

कोतवाल सिपाहियों के साथ गया और सब भांडों को घेर कर ले आया। राजा के समक्ष उपस्थित किया। उन्हें देखकर राजा का खून उबलने लगा। उसने उसी समय आदेश दिया—ले जाओ, इन सब को शूली पर चढ़ा कर मार डालो।

राजा का आदेश सुनते ही भांड थर-थर कांपने लगे। मौत उनके सामने नाचने लगी। अत्यन्त दीनतापूर्वक वे बोले—महाराज, कुसूर के लिए माफी दी जाए। हमें नहीं मालूम था कि श्रीपालजी कौन हैं? हमें तो धवल सेठ ने लोभ दिया था। हमसे जो भूल हुई है, वह पेट के खातिर ही हुई है। दीनानाथ, हमें क्षमा करें।

राजा—सेठ ने तुमको क्या लोभ दिया था?

भांड—हुजूर, उसने हमें अपने पास बुलाया और कहा कि राजा के यहां श्रीपाल नामक एक आदमी है। उसे भांड बना दो तो एक लाख सोना-मोहरें देंगे। अन्नदाता; एक लाख मोहरों

का लोभ हम नहीं छोड़ सके। फिर हमने सोचा–श्रीपालजी कोई साधारण पुरुष होंगे। यह नहीं पता था कि वे महाराज के कुंवर साहब हैं। इस प्रकार भूल में भूल हो गई। दयासागर! हमें प्राणों की भिक्षा दीजिए।

राजा ने कोतवाल से कहा—इन भांडों को अभी हवालात में रक्खो। इनके विषय में बाद में निर्णय किया जाएगा।

अब राजा को लेश मात्र भी सन्देह नहीं रहा कि यह सब शरारत और दुष्टता उस धवल बनिये की ही है। वह बड़ा ही पापी और पिशाच जान पड़ता है। अतएव उसने कोतवाल को पुनः आदेश दिया–जाओ और धवल सेठ को पकड़ कर मेरे सामने हाजिर करो।

कोतवाल गया और सेठ को पकड़ कर ले आया। बँधन में बँधे सेठ को राजा के सामने देख कर श्रीपाल सोचने लगे–यद्यपि इस दुष्ट ने मुझे बहुत सताया है और मार डालने में भी कोई कसर नहीं रक्खी है, मेरी पत्नियों की इज्जत लेने की कोशिश की है, उन्हें बहुत कष्ट भी दिए हैं, और इन सब पैशाचिक कृत्यों की उपयुक्त सजा यही हो सकती है कि इसे कुत्ते की मौत मरवा दिया जाय। तथापि हमें इसके समान नहीं होना चाहिए। इसके प्राण चले जाएँगे तो इसकी पत्नी और सन्तान को कितना कष्ट होगा। अपकार का बदला अपकार के द्वारा लेने

में मानव की कोई विशेषता नहीं है। यह तो सामान्य लोग करते ही रहते हैं। जिसे सद्धर्म की प्राप्ति हुई है, जिसका विवेक जागृत है और जो कर्मफल पर विश्वास रखता है, उसे प्रत्येक घटना को समभाव से ही सहन करना चाहिए। जब मेरा विश्वास है कि प्राणी के सुख-दुःख उसके शुभाशुभ कर्मों के ही विपाक हैं, तो मुझे धवल सेठ का अनिष्ट सोचने या करने का क्या अधिकार रह जाता है?

श्रीपालजी ने सोचा—अपराध, अन्याय एवं अत्याचार करना गर्हित है, इसमें कोई सन्देह नहीं, तथापि इसके बदले मनुष्य को ऐसा दंड मिलना चाहिए कि वह अपना आगे का जीवन सुधार ले। प्राणदण्ड देने से उसे सुधरने का कोई अवसर ही नहीं रहता। अतएव इस सेठ को प्राणदण्ड से बचा लेना ही मेरे लिए उचित है।

इस प्रकार सोच-विचार कर श्रीपाल ने राजा से प्रार्थना कि—महाराज! यद्यपि इस वणिक् का अपराध अक्षम्य है, तथापि मेरा अनुरोध है कि इसे क्षमा कर दिया जाय और सुधरने का अवसर दिया जाय। इसे मैंने धर्म का पिता कहा था। यह नालायक साबित हुआ है तथापि मैं चाहता हूं कि यह सन्मार्ग पर आ जाए और अपने कुकृत्यों के लिए पश्चाताप करके शुद्ध करे।

राजा अपने जामाता की असाधारण उदारता और महानुभावना देख कर चकित रह गया। यद्यपि वह सेठ को कठोर से कठोर दण्ड देना चाहता था, मगर इस समय अपने जामाता की इच्छा के प्रतिकूल कोई कार्य भी नहीं करना चाहता था। अतएव श्रीपाल के सन्तोष के लिए उसने धवल सेठ को क्षमा कर दिया।

सेठ चला गया। जैसे कत्लखाने से सकुशल बच निकलने वाला पशु जल्दी-जल्दी भाग कर जाता है; उसी प्रकार धवल सेठ भी अपनी जान की खैर मनाता हुआ अपने स्थान की ओर भागा।

इधर राजा ने भरे दरबार में खड़े होकर कहा—यह हमारे लिए महान् सौभाग्य की बात है कि हमें श्रीपालजी जैसे असाधारण क्षमावान्, उदार, महानुभाव, वीर और धर्मनिष्ठ युवक जामाता के रूप में प्राप्त हुए हैं। वे उत्तम राजवंश के आभूषण हैं। इनकी इस उदारता का विचार तो कीजिए कि जिसने प्राण लेने में कसर नहीं रक्खी; उसके प्रति भी अनुपम क्षमा प्रदर्शित की। कितनी दयालुता ! कैसी उदारवृत्ति ! मेरी कन्या का अहोभाग्य था कि उसे ऐसे पतिरत्न की प्राप्ति हुई।

श्रीपालजी महाराज के मुख से अपनी प्रशंसा सुन कर संकुचित हो गए। कहने लगे—महाराज, इसमें मेरी कोई विशेषता नहीं है। एक संस्कारवान् पुरुष को जो करना चाहिए वही मैंने किया है। मुझे नवपदजी के प्रताप से जीवन में अपूर्व

प्रकाश मिला है। मेरी जो भी सफलता है वह सब धर्म के कारण ही है।

दरबार समाप्त हुआ और सब लोग यथास्थान चले गए। श्रीपाल अपनी तीनों पत्नियों के साथ सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। भांडों को भी क्षमा कर दिया गया।

भाइयो ! दुष्ट जीव अनेक प्रकार से शिक्षा पाने पर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ते। कहा है—

> कांदो बांदो नीमड़ो, लस्सन लाख उपाव।
> स्वाद गंध छोड़े नहीं, जाको जास स्वभाव ॥

जैसे कांदा अपनी गंध का और नीम अपने रस का परित्याग नहीं करता उसी प्रकार दुष्ट जन भी अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ते।

धवल सेठ राजा के यहां से छुटकारा पाकर गया तो उसे श्रीपाल का कृतज्ञ होना चाहिए था। उन्होंने इस बार उसे प्राण-संकट से बचाया था। परन्तु वह कृतघ्न अब भी श्रीपाल के विनाश का उपाय सोचने लगा। वह इस चीज का पश्चात्ताप करने लगा कि अब तक मेरा एक भी तीर निशाने पर नहीं लगा। श्रीपाल हर बार विजयी होता है। तो इस बार ऐसा कोई प्रयास किया जाय कि श्रीपाल सदा के लिए इस धरती से उठ जाए और

मैं उसकी सम्पत्ति का स्वामी बन जाऊँ। यह मेरा अन्तिम तीर होगा और उसमें मुझे सफलता मिलनी चाहिए।

इस बार धवल सेठ स्वयं अगुवा बना। अन्धकारमयी रजनी में, हाथ में तलवार सँभाल कर वह चला और श्रीपाल के महल के समीप पहुँचा। उसने गोह की कमर में रस्सी बांधी और उसे महल के सातवें खण्ड पर फैंक दिया। गोह वहां चिपक गया। तत्पश्चात् मुँह में तलवार दबा कर वह रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ा।

भाइयो ! जो दूसरे के लिए गड्ढा खोदता है, उसके लिए कुंआ तैयार रहता है। श्रीपाल को मारने के लिए धवल सेठ ऊपर चढ़ रहा है किन्तु बेचारे को क्या पता कि उसके पापों का घड़ा भर चुका है। सेठ चढ़ता-चढ़ता ज्यों ही सातवें खण्ड तक पहुँचा कि अचानक उसका पैर फिसल गया और धड़ाम से जमीन पर आ गिरा। उसी की तलवार से उसका शरीर कट गया और उसी समय उसके पापमय जीवन का अन्त हो गया।

धड़ाके की आवाज सुन कर पहरेदार दौड़े और देखा कि धवल सेठ मरा पड़ा है।

श्रीपालजी को जब यह समाचार मिला तो वे धवल सेठ के मनोरथ को समझ कर भी अफसोस, मेरा धर्म का पिता अपने हाथों प्राण गँवा कर, अपने किए पापों का फल भोगने के

लिए चला गया। उन्होंने इस घटना पर शोक प्रकट किया और उसका दाहसंस्कार किया। सेठ की मृत्यु हो जाने पर श्रीपालजी उसके भी जहाजों के स्वामी बन गए। इस प्रकार उनके पास पांच सौ जहाज हो गए।

श्रीपालजी एक दिन वायुसेवन के लिए जा रहे थे कि एक व्यापारी से उनकी भेंट हो गई। उन्होंने पूछा-भाई, आप कहां के निवासी हैं? यहां किस प्रयोजन से आए हैं?

व्यापारी ने कहा-कुमार! हम व्यापारी हैं। देश-देश घूमते फिरते हैं। व्यापार के निमित्त ही यहां आए हैं।

श्रीपाल बोले-ठीक, कहीं कोई अद्भुत बात देखो हो तो हमें भी सुनाओ।

तब व्यापारी ने कहा-यहां से चार सौ कोश की दूरी पर कुण्डलपुर नामक नगर है। वहां मकरकेतु राजा और कर्पूर-तिलका रानी है। उनकी गुणसुन्दरी नामक पुत्री है। उसका शरीर बिजली की तरह दमकता है। वह चौसठ कलाओं में कुशल है। संगीतकला पर उसका असाधारण अधिकार है। संसार में शायद ही कोई उसकी बराबरी कर सके। वीणावादन में भी अद्वितीय है। उस कन्या ने निश्चय किया है कि मैं किसी ऐसे-वैसे के साथ विवाह करके अपना जीवन नष्ट नहीं करूँगी। जो मुझे संगीत और वीणावादन में पराजित करेगा उसी को

अपना जीवन अर्पित करूँगी। ऐसा न हुआ तो आजीवन कौमार्य का पालन करूँगी। उसने अपने पिता को भी यह प्रतिज्ञा बतला दी है।

गुणसुन्दरी की प्रतिज्ञा की बात घर-घर में फैल गई है। घर-घर में मनचले युवक उसे प्राप्त करने के लिए वीणावादन का अभ्यास कर रहे हैं। इस कारण वह सारा नगर संगीतशाला सरीखा बना हुआ है।

श्रीपालजी ने यह नूतन वार्त्ता सुनी तो उनके मन में भी एक नवीन उमंग उठी। मगर प्रश्न उपस्थित हुआ कि इतनी दूर पहुँचा कैसे जाए? चार सौ कोस दूर।

तब श्रीपाल ने नवपद का ध्यान किया। ध्यान करते ही विमलेश्वर नामक प्रथम देवलोक का देव उनके सामने आ खड़ा हुआ। वह बोला—मैं इस मंत्र के अधीन हूं। आपको यह हार उपहार में देता हूं। इसमें चार गुण हैं—इसके प्रभाव से इच्छित रूप बन जाता है, इष्ट स्थान पर पहुँचा जा सकता है, यह सब कलाएँ सिखा देता है और सब प्रकार के जहर को हरण कर लेता है। इस हार के प्रभाव से मैं स्मरण करते ही उपस्थित हो जाऊँगा।

इस प्रकार कह कर और हार प्रदान करके देवता अपने पर चला गया। श्रीपाल आनन्द से महल में सोए और

उस नगर का स्मरण करते ही वहां पहुंच गए। उन्होंने कुबड़ा बनने की इच्छा की और वे कुबड़ा बन गए। इस प्रकार कुबड़े का रूप धारण करके 'राम राम' की रट लगाते हुए चलने लगे रास्ते में उन्होंने एक से पूछा—भाई, वीणा सिखाने वाले का घर कौन-सा है? और जब मालूम हो गया तो वहां जा पहुँचे और बोले—महाशय, मैं भी वीणावादन सीखना चाहता हूं। सिखाने वाले ने कुछ सोच कर सिखाने की स्वीकृति दे दी। श्रीपालजी ने उसे तलवार भेंट की। यद्यपि हार के प्रभाव से वह वीणावादन में निपुण हो चुके थे, फिर भी कलाविदों के सम्पर्क में आने के लिए वे सीखने लगे।

एक मास के पश्चात् संगीतगोष्ठी का राजमहल में आयोजन हुआ। दूर दूर से राजा और राजकुमार तथा अन्य कलाविद् एकत्र हुए। श्रीपालजी भी कुबड़े के रूप में वहां पहुंचे, मगर द्वारपाल ने उन्हें रोक दिया। उन्होंने उसे आभूषण उतार कर दे दिए, तब कहीं अन्दर प्रवेश करने की आज्ञा मिली। सब आगत जन यथास्थान बैठ गए। तब गुणसुन्दरी अपनी वीणा लेकर आई। आश्चर्य की बात तो यह थी कि श्रीपालजी सब लोगों को कुबड़े के रूप में दिखाई दे रहे थे, मगर राजकुमारी को वे अतीव सुन्दरकुमार के रुप में नजर आ रहे थे। उन्हें देखते ही गुणसुन्दरी का चित्त उनकी ओर आकृष्ट हुआ और वह सोचने लगी—यही कुमार मुझे वीणावादन में जीत सकते हैं। इनके

अतिरिक्त अन्य कोई परास्त नहीं कर सकता।

अनुक्रम से सब ने अपना-अपना वादन-कौशल प्रदर्शित किया, मगर राजकुमारी अविजित रही। जब श्रीपालजी की बारी आई तो उन्हें देख कर लोग हँसने लगे किसी-किसी ने कहा—यह महाशय कला की साक्षात् मूर्त्ति हैं अवश्य राजकुमारी को परास्त करके वरण करेंगे। राजकुमारी का भाग्य चमक उठेगा।

मगर श्रीपालजी अपनी ही धुन में मस्त थे। उन्होंने वीणा हाथ में थामी और बजाना प्रारम किया तो सब के सब श्रोता निद्रा में लीन हो गए। सब को निद्रामग्न देख कर उन्होंने सबके आभूषण उतार लिये और एक पोटली में बांध कर अपने पास रख लिए।

थोड़ी देर बाद निद्राभंग होने पर सब ने अपने-अपने आभूषण सँभाले तो कहने लगे—अरे, आभूषण कहां गए? कौन ले गया?

राजकुमारी गुणसुन्दरी यह अपूर्व चमत्कार देख कर चकित रह गई। वह वीणावादन में अद्वितीय थी और उसे अपने स कौशल पर अभिमान था। मगर श्रीपालजी का कौशल अनूठा ।। वह अत्यन्त प्रभावित हुई।

किस प्रकार श्रीपालजी लोगों के आभूषण लौटाते हैं और कैस प्रकार गुणसुन्दरी का वरण करते हैं, यह सब आगे सुनने से विदित होगा।

भाइयो! जो जीव शुद्ध मन से नवपदजी का स्मरण करेंगे वे इस लोक और परलोक में सुखी हो जाएँगे।

कैन्टोनमेन्ट बैंगलोर
१४-१०-५६

ओली तप

[८]

भाइयो !

श्रीसमवायांग सूत्र के पच्चीसवें समवाय को प्रारम्भ करते हुए कल बतलाया गया था कि पांच महाव्रतों की रक्षा के लिए साधक को पच्चीस भावनाओं का पालन-सेवन करना परमावश्यक है। इससे आगे शास्त्रकार कहते हैं कि उन्नीसवें तीर्थङ्कर भगवान् मल्लीनाथ के शरीर की अवगाहना पच्चीस धनुष की थी।

अनन्तर बतलाया गया है कि सब दीर्घ वैताढय पर्वत पच्चीस योजन ऊँचे और पच्चीस गव्यूति ऊँडे होते हैं।

दूसरे नरक में पच्चीस लाख नारकावास हैं।

श्रीमद् आचारांगसूत्र के चूलिकासहित पच्चीस अध्ययन कहे गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) शस्त्रपरिज्ञा (२) लोकविजय (३) शीतोष्णीय (४) सम्यक्त्व (५) आवंती (६) धूत (कर्मों को टालने वाला), (७) विमोक्षाध्ययन (८) उपधानश्रुत

(९) महापरिज्ञा (१०) पिण्डैषणा (११) शय्या (साधु को कैसे मकान में रहना चाहिए, यह बतलाने वाला अध्ययन), (१२) ईर्या (१३) भाषा (१४) वस्त्रैषणा (१५) पात्रैषणा (१६) अवग्रहप्रतिमा (१७-२३) सात सप्तैकक (२४) भावना (२५) विमुक्ति।

इससे आगे बतलाया गया है कि जो जीव मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय हैं और अपर्याप्त हैं, वे पच्चीस कर्मप्रकृतियों का बन्ध करते हैं।

दो, तीन और चार इन्द्रियों वाले जीव विकलेन्द्रिय कहलाते हैं। ऐसे जीवों में समझ नहीं होती, क्योंकि उन्हें मन प्राप्त नहीं है और उनकी इन्द्रियां भी अधूरी हैं। वे मिथ्यादृष्टि होते हैं-उनमें यथार्थ तत्त्वश्रद्धा नहीं होती। जब वे अपर्याप्त अवस्था में होते हैं अर्थात् उनमें पाई जाने योग्य पांच पर्याप्तियां पूर्ण नहीं होतीं; तब वे पच्चीस कर्मप्रकृतियों को ही बांधते हैं।

पच्चीस बोल के थोकड़े में, पांचवें बोल में छह पर्याप्तियों का उल्लेख आता है—(१) आहारपर्याप्ति (२) शरीरपर्याप्ति (३) इन्द्रियपर्याप्ति (४) श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति (५) भाषापर्याप्ति और (६) मनःपर्याप्ति। इनमें से एकेन्द्रिय जीव में चार, असंज्ञी पंचेन्द्रियों तक में पांच और संज्ञीपंचेन्द्रियों में छह होती हैं। कोई भी जीव जब नया शरीर धारण करने के लिए अपने जन्मस्थान में आता है तो सर्वप्रथम शरीर के योग्य पुद्गलों को ग्रहण

करता है। यही उसका आहार करना कहलाता है। आहार करेगा तो शरीर बनेगा, शरीर बनेगा तो इन्द्रियां भी बनेंगी। इन्द्रियां होंगी तो श्वासोच्छ्वास भी लेगा और भाषा भी बोलेगा। इसके बाद मन भी हो जाएगा।

तो आहार आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें शरीर, इन्द्रिय आदि के रूप में परिणत करने की शक्ति की पूर्णता पर्याप्त कहलाती है। जिस जीव में जितनी पर्याप्तियां होती हैं, उतनी पूर्ण हो चुकी हों तो वह पर्याप्त कहलाता है और जब तक पूर्ण न हुई हों तब तक अपर्याप्त कहा जाता है। पर्याप्तियां पूर्ण होने में अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक समय नहीं लगता। सब पर्याप्तियों का प्रारम्भ एक ही साथ हो जाता है, मगर पूर्त्ति क्रमशः होती है।

इस प्रकार जो विकलेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि और अपर्याप्त हैं, वे नामकर्म की पच्चीस प्रकृतियों का बंध करते हैं। यों तो नामकर्म की प्रकृतियां तेरानवे हैं, मगर ये जीव उन सब का बंध नहीं करते हैं। पच्चीस प्रकृतियां इस प्रकार हैं—

(१) तिर्यंचगति नामकर्म (२) विकलेन्द्रियजाति नामकर्म (३) औदारिक शरीरनाम (४) तैजसशरीरनाम (५) कार्मणशरीर (६) हुंडकसंस्थान (७) औदारिकशरीर-अंगोपांग (८) सेवार्त्त संहनन (९) वर्णनामकर्म (१०) गंधनामकर्म (११) रस नाम कर्म (१२) स्पर्शनामकर्म (१३) तिर्यञ्चानुपूर्वी (१४) अगुरुलघु नामकर्म (१५)

उपघात नामकर्म (१६) त्रसनामकर्म (१७) बादर नामकर्म (१८) अपर्याप्त नामकर्म (१६) प्रत्येक नामकर्म (२०) अस्थिर नामकर्म (२१) अशुभ नामकर्म (२२) दुर्भगनामकर्म (२३) अनादेय नामकर्म (२४) अयशःकीर्त्ति नामकर्म और (२५) निर्माण नामकर्म।

आगे बतलाया गया है कि गंगा और सिन्धु नामक नदियां पच्चीस गव्यूति के प्रवाह से पद्मद्रह में से निकल कर, हिमवन्त पर्वत पर पांच सौ योजन दक्षिण दिशा में जाकर, कुम्भ के मुख के समान पच्चीस कोस चौड़ी मगर के मुखाकार प्रणाली में, मुक्तावली हार के संस्थान से; सौ योजन नीचे गंगाप्रपात कुण्ड में गंगा तथा सिन्धुप्रपात कुण्ड में सिन्धु नदी गिरती है। इसी प्रकार रक्ता और रक्तवती नामक दोनों नदियां पुण्डरीक द्रह से निकल कर, शिखरि पर्वत के ऊपर पांच सौ योजन जाकर, मगर के मुख के आकार की प्रणाली में, मुक्ताहार के संस्थान से, सौ योजन नीचे, रक्ताकुण्ड और रक्तवती कुण्ड में गिरती है।

आगे बतलाया गया है कि चौदहवें लोकबिन्दुसार नामक पूर्व में पच्चीस वस्तु (वस्तु-बड़े-बड़े अध्ययन) हैं।

फिर शास्त्रकार फर्माते हैं कि पहले नरक में किसी-किसी नारक की आयु पच्चीस पल्योपम की है। सातवें नरक के नारकों में से किसी-किसी की आयु पच्चीस सागरोपम की है।

किसी-किसी असुरकुमार निकाय के देव की स्थिति

करता है। यही उसका आहार करना कहलाता है। आहार करेगा तो शरीर बनेगा, शरीर बनेगा तो इन्द्रियां भी बनेंगी। इन्द्रियां होंगी तो श्वासोच्छ्वास भी लेगा और भाषा भी बोलेगा। इसके बाद मन भी हो जाएगा।

तो आहार आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें शरीर, इन्द्रिय आदि के रूप में परिणत करने की शक्ति की पूर्णता पर्याप्त कहलाती है। जिस जीव में जितनी पर्याप्तियां होती हैं, उतनी पूर्ण हो चुकी हों तो वह पर्याप्त कहलाता है और जब तक पूर्ण न हुई हों तब तक अपर्याप्त कहा जाता है। पर्याप्तियां पूर्ण होने में अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक समय नहीं लगता। सब पर्याप्तियों का प्रारम्भ एक ही साथ हो जाता है, मगर पूर्त्ति क्रमशः होती है।

इस प्रकार जो विकलेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि और अपर्याप्त हैं, वे नामकर्म की पच्चीस प्रकृतियों का बंध करते हैं। यों तो नामकर्म की प्रकृतियां तेरानवे हैं, मगर ये जीव उन सब का बंध नहीं करते हैं। पच्चीस प्रकृतियां इस प्रकार हैं—

(१) तिर्यंचगति नामकर्म (२) विकलेन्द्रियजाति नामकर्म (३) औदारिक शरीरनाम (४) तैजसशरीरनाम (५) कार्मणशरीर (६) हुंडकसंस्थान (७) औदारिकशरीर-अंगोपांग (८) सेवार्त्त संहनन (९) वर्णनामकर्म (१०) गंधनामकर्म (११) रस नाम कर्म (१२) स्पर्शनामकर्म (१३) तिर्यञ्चानुपूर्वी (१४) अगुरुलघु नामकर्म (१५)

उपघात नामकर्म (१६) त्रसनामकर्म (१७) बादर नामकर्म (१८) अपर्याप्त नामकर्म (१६) प्रत्येक नामकर्म (२०) अस्थिर नामकर्म (२१) अशुभ नामकर्म (२२) दुर्भगनामकर्म (२३) अनादेय नामकर्म (२४) अयशःकीर्त्ति नामकर्म और (२५) निर्माण नामकर्म।

आगे बतलाया गया है कि गंगा और सिन्धु नामक नदियां पच्चीस गव्यूति के प्रवाह से पद्मद्रह में से निकल कर, हिमवन्त पर्वत पर पांच सौ योजन दक्षिण दिशा में जाकर, कुम्भ के मुख के समान पच्चीस कोस चौड़ी मगर के मुखाकार प्रणाली में, मुक्तावली हार के सस्थान से; सौ योजन नीचे गंगाप्रपात कुण्ड में गंगा तथा सिन्धुप्रपात कुण्ड में सिन्धु नदी गिरती है। इसी प्रकार रक्ता और रक्तवती नामक दोनों नदियां पुण्डरीक द्रह से निकल कर, शिखरि पर्वत के ऊपर पांच सौ योजन जाकर, मगर के मुख के आकार की प्रणाली में, मुक्ताहार के संस्थान से, सौ योजन नीचे, रक्ताकुण्ड और रक्तवती कुण्ड में गिरती हैं।

आगे बतलाया गया है कि चौदहवें लोकविन्दुसार नामक पूर्व में पच्चीस वत्थु (वस्तु-बड़े-बड़े अध्ययन) हैं।

फिर शास्त्रकार फर्माते हैं कि पहले नरक में किसी-किसी नारक की आयु पच्चीस पल्योपम की है। सातवें नरक के नारकों में से किसी-किसी की आयु पच्चीस सागरोपम की है।

किसी-किसी असुरकुमार निकाय के देव की स्थिति

पच्चीस पल्योपम की कही गई है। प्रथम और द्वितीय देवलोक के देवों में भी किन्हीं-किन्हीं देवों की स्थिति पच्चीस पल्योपम की है। चौथे ग्रैवेयक विमान के देवों की जघन्य स्थिति पच्चीस सागरोपम की है। तीसरे ग्रैवेयक के देवों की उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरोपम की कही गई है।

पच्चीस सागरोपम की स्थिति वाले देव पच्चीस पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। पच्चीस हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें आहार करने की अभिलाषा होती है।

संसार में कोई-कोई भव्य प्राणी ऐसे भी हैं जो पच्चीस भव धारण करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगे और समस्त कर्मों का अन्त करेंगे।

छब्बीसवें समवाय में शास्त्रकार फर्माते हैं कि दशाकल्प-व्यवहार के छब्बीस उद्देशनकाल हैं, जिनमें से दशाश्रुतस्कंध के दस, व्यवहारसूत्र के दस, बृहत्कल्प के छह हैं। इस तरह तीनों के मिलाकर छब्बीस उद्देशनकाल होते हैं।

इसके बाद बतलाया गया है कि अभव्य जीव में मोहनीय कर्म की छब्बीस प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

आपको विदित होगा कि कर्म की मूल प्रकृतियां आठ हैं और उत्तरप्रकृतियां एक सौ अड़तालीस मानी गई हैं; जो इस प्रकार हैं—(१) ज्ञानावरणीय की पांच (२) दर्शनावरणीय की नौ

(३) वेदनीय की दो (४) मोहनीय की अट्ठाईस (५) आयु की चार (६) नामकर्म की तेरानवे (७) गोत्र कर्म की दो और अन्तराय की पांच।

भाइयो। जैसे मूंग और मोठ में जो घोरड़े होते हैं, उन्हें कितना ही सिखाया जाय, वे नहीं सीखते। इसी प्रकार कुछ जीव भी ऐसे हैं जिन्हें कैसा भी उत्तम योग मिल जाय परन्तु उनमें मोक्ष में जाने योग्य गुणों का आविर्भाव नहीं होता। यह अभव्य-पन पारिणामिक भाव होने के कारण कभी बदलता भी नहीं है। अतएव अभव्यजीव सदा अभव्य ही रहते हैं—कदापि भव्य नहीं हो सकते। इन अभव्य जीवों में मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों में से छब्बीस की सत्ता सदैव रहती है। मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय नामक दो प्रकृतियों की सत्ता नहीं होती। वे छब्बीस प्रकृतियां इस प्रकार हैं—मिथ्यात्वमोहनीय, सोलह कषाय (चार अनन्तानुबंधी, चार अप्रत्याख्यानावरण, चार प्रत्याख्यानावरण, चार संज्वलन); स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पुरुषवेद; हास्य रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा।

भगवान् ने फर्माया है कि अभव्य जीव कभी मोक्ष प्राप्त नहीं करेंगे, यह उनका स्वभाव है।

इसके पश्चात् बतलाया गया है कि रत्नप्रभा नामक प्रथम नरकभूमि में किसी-किसी नारक जीव की आयु छब्बीस पल्योपम

की है। सातवें नरक के नारकों में कोई-कोई छब्बीस सागरोपम की स्थिति वाले हैं।

असुरकुमार जाति के किसी-किसी देव की छब्बीस पल्योपम की स्थिति है। प्रथम और द्वितीय देवलोक के किसी-किसी देवता की छब्बीस पल्योपम की स्थिति है।

पांचवें ग्रैवेयक में जघन्य स्थिति छब्बीस सागरोपम की है और चौथे ग्रैवेयक विमान में उत्कृष्ट स्थिति छब्बीस सागरोपम की है।

छब्बीस सागरोपम की स्थिति वाले देवता छब्बीस पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छब्बीस हजार वर्ष में उन्हें आहार ग्रहण करने की इच्छा होती है।

संसार में कितनेक भव्य जीव ऐसे हैं जो छब्बीस भव धारण करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगे और परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे।

सत्ताईसवें समवाय को प्रारंभ करते हुए शास्त्रकार फर्माते हैं कि साधु के सत्ताईस गुण कहे गए हैं। उनमें पहला गुण है-प्राणातिपात की निवृत्ति। अर्थात् जगत् के किसी भी त्रस, स्थावर जीव के प्राणों का विनाश न करना और सम्पूर्ण अहिंसा का पालन करना। दूसरा गुण है-मृषावाद का त्याग करना, अर्थात स्थूल या सूक्ष्म असत्य का प्रयोग न करना। तीसरा गुण अदत्तादान से निवृत्त होना है। चौथा गुण सम्पूर्ण रूप से

ब्रह्मचर्य का पालन करना–मैथुनक्रिया से विरत होना है पांचवां गुण परिग्रह का पूर्ण रूप से परित्याग करना है।

छठा गुण श्रोत्रेन्द्रिय को वश में करना है। कान का स्वभाव श्रवण करने का है। जो शब्द बोले जाते हैं, वे चाहे मनोज्ञ हों या अमनोज्ञ हों, साधु के कानों में पड़ते हैं। पर साधु उन्हें सुनकर राग-द्वेष न करे। स्तुति एवं प्रशंसा के शब्द सुनकर प्रसन्न न हो और निन्दा एवं गाली सुनकर अप्रसन्न न हो।

सातवां गुण है-चक्षुरिन्द्रिय का निग्रह करना। चक्षुरिन्द्रिय का स्वभाव देखना है। उसके सामने मनोज्ञ रूप भी आते हैं और अमनोज्ञ रूप भी। परन्तु साधु का धर्म यह है कि वह इनमें समभाव धारण करे।

आठवां गुण घ्राणेन्द्रिय का निग्रह करना है। नाक के संपर्क में कभी सुगन्ध तो कभी दुर्गंध भी आती है। परन्तु साधु सुगन्ध पर राग और दुर्गंध पर द्वेष न करे-समभाव धारण करें।

नौवां गुण है—रसनेन्द्रियनिग्रह। रसना (जीभ) का स्वभाव स्वाद का अनुभव करना है। साधु को कभी अच्छे रस वाले पदार्थ मिलते हैं तो कभी अनिष्ट रस वाले पदार्थ भी प्राप्त होते हैं। दोनों में समभाव धारण करना साधु का कर्त्तव्य है।

दसवां गुण स्पर्शनेन्द्रिय का निग्रह करना है। स्पर्श का अनुभव करना स्पर्शनेन्द्रिय का स्वभाव है। साधु के सामने आठों

प्रकार के स्पर्श आते हैं। परन्तु उसे मनोज्ञ स्पर्श पर राग और अमनोज्ञ स्पर्श पर द्वेष धारण नहीं करना चाहिए।

ग्यारहवां गुण क्रोध का त्याग करना है। क्षमा भाव का अवलम्बन करके क्रोध को जीतना चाहिए।

बारहवां गुण मान का परित्याग करना है। विनम्रता धारण करके मान से बचना चाहिए।

तेरहवां गुण माया का त्याग करना। ऋजुता-सरलता का अवलंबन करके माया से बचना चाहिए।

लोभ का त्याग करना साधु का चौदहवां गुण है। यह लोभ बड़ा जबर्दस्त होता है और अनेक पापों का जनक है। अत्यन्त सावधान रह कर इससे दूर रहना चाहिए।

इसके बाद पन्द्रहवां गुण भावसत्य, सोलहवां करण सत्य और सत्तरहवां योग सत्य है। अर्थात् साधु के हृदय के विचार भी सच्चे जो कार्य कर रहा है वह भी सच्चा, और एका की या अनेकों के साथ में रहता है, तो भी उसके लिए वही बात है। जंगल में या नगर में रहता है, तब भी एक ही बात है। साधु सो रहा है या जाग रहा है, तब भी वही बात है। वह मन, वचन और काय की शुभ योग में ही प्रवृत्ति करता है।

अठारहवां गुण क्षमा है। सताने वाला कितना ही सतावे या प्राण भी ले ले, फिर भी वह शान्ति ही धारण करे।

छत्तीसवां गुण वैराग्य है। संसारी जीव सांसारिक पदार्थों और कार्यों में राग धारण करते हैं, किन्तु साधु उनसे विरक्त हो चुका है। पूर्व जीवन में वह सांसारिक कार्यों में त्रेसठ के अङ्क के समान था, अब छत्तीस के अङ्क जैसा-विमुख हो गया है। अतएव गृहस्थ और साधु का मार्ग पृथक्-पृथक् हो गया है। किसी ने ठीक ही कहा है—

साधु देखी दुनिया हँसे, दुनिया देख साध।
उलट पलट के ख्याल में, कोई परमार्थ लाध॥

साधु को देख कर दुनिया के लोग हँसते हैं और कहते हैं देखो, यह बेचारा कितने कष्ट भोग रहा है। मनुष्य का तन पाकर न मन चाहा खा सकता है, न पी सकता है, न भोगोपभोगों को भोग सकता है। मोटर रेल और वायुयान जैसे यात्रा के सुखद साधनों को छोड़ कर बिना जूते पैदल भटकता रहता है। मूंड मुड़ा लिया है और अब हाथों से बाल नौंचता है। न स्त्री का सुख, न बाल-बच्चों का सुख और न परिवार वास का आनन्द कैसी दयनीय दशा है इसकी।

साधु इससे विपरीत सोचता है। वह कहता है-यह गृहस्थ तृष्णा और लोभ के जाल में पड़ कर रात-दिन पचते रहते हैं। कुछ भी पाले, कभी सन्तोष ही नहीं। गधे की तरह लक्ष्मी एवं परिग्रह का भार ढोना ही इन के भाग्य में है जानते हैं-इस असर

हैं, मगर एक दिन चल बसेंगे और सब का सब यहीं छोड़ जाएँगे आपकी कमाई से दूसरे मौज करेंगे और पाप का फल इन्हें भुगतना पड़ेगा। फिर भी रागान्ध होकर यह कुछ भी नहीं सोचते। पारमार्थिक दृष्टि इन की खुली ही नहीं है। दिन रात व्याकुल रहते हैं। और एक हम हैं अकिंचन और एकाकी। दुनिया से कोई सरोकार नहीं। किसी के वियोग की चिन्ता नहीं। लाभ-अलाभ में मस्त, जीवन मरण की चिन्ता से मुक्त, भोगों की कीचड़ से अलिप्त, कितनी निराकुलता है इस जीवन में। परन्तु यह गृहस्थ जन चिन्ताओं का भारी बोझा माथे पर उठाए फिरते हैं।

इस आत्मा ने अनादि काल से संसार में भ्रमण करते हुए सभी प्रकार के पुद्गलों का उपभोग किया है। सभी प्रकार का एश-आराम भोग लिया है। जुगलिया बन कर और देवता बन कर भी भोग भोगने पर भी आज तक तृप्ति नहीं हुई। भोग से तृप्ति हो भी नहीं सकती। अग्नि में ईंधन डालने से तो अग्नि अधिक प्रज्वलित होती है, शान्त नहीं होती। अग्नि को शान्त करने के लिए उस पर पानी डालना पड़ता है। जब यह जीव पूर्ण संयत अवस्था को अंगीकार करेगा, तभी भोगाभिलाषा शान्त होगी।

स्व० पूज्य खूबचन्द्रजी म० एक बार अपने शिष्य स्व० हजारीमलजी म० के साथ जङ्गल जा रहे थे। पास में एक पहाड़ देख कर वे उसी ओर गए तो देखा कि वहां सैकड़ों स्त्री-पुरुष

मजदूरी करके अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं। इधर से यह गुरु-चेला जा रहे थे और सामने से कुछ मजदूर नर-नारी, जो फटे हाल थे, आ रहे थे। छोटे मुनि को देख कर स्त्री कहने लगी—देखो, इस बेचारे ने क्या खाया पीया है। बेचारे बच्चे को इस साधु ने व्यर्थ अपना चेला बना लिया।

यह सुन कर हजारीमलजी म० ने कहा—भाई तूने तो खा पी लिया है न? इस अवस्था में कितना सुख भोग रही है! अपनी दशा पर विचार तो कर।

इस प्रकार अज्ञानी जीव सन्तों को देख कर तरस खाते हैं और सन्त अज्ञानियों पर तरस खाते हैं।

तो भले ही साधु का कोई उपहास करे परन्तु साधु को क्षमा रखना चाहिए। कोई प्राण लेने को तत्पर हो तो उस पर भी साधु का अखण्ड क्षमाभाव रहना चाहिए और अपने वैराग्य की रक्षा करना चाहिए।

साधु का बीसवां गुण है मन को अप्रशस्त व्यापार से रोकना। अपने मन को कदापि बुराई की ओर नहीं जाने देना चाहिए। सदैव प्रशस्त विचारों में ही उलझाए रखना चाहिए।

इक्कीसवां गुण वचन की समाधारणता है। किसी को अप्रिय हो, अनिष्ट हो संदिग्ध हो, असत्य हो या किसी

प्रकार से अकल्याणकर हो, ऐसे वचन का प्रयोग करना साधु का धर्म नहीं है।

बाईसवां गुण है—काय को अकुशल व्यापार से विरत रखना अर्थात् शरीर को अप्रशस्त व्यापार से हटाकर प्रशस्त व्योपारों में लगाना।

तईसवां गुण ज्ञानसम्पन्नता है। साधु को तत्त्व का ज्ञान होना चाहिए। ज्ञानहीन साधक ठीक तरह साधना नहीं कर सकता। जो अच्छे बुरे को नहीं जानता वह कैसे कल्याण कर सकता है।

चौबीसवां गुण दर्शनसम्पन्नता है। साधु का दर्शन अर्थात् तत्त्वश्रद्धान निर्मल होना चाहिए। कदाचित् देवता भी आकर डिगाने का प्रयत्न करे तो भी साधु को अपनी विशुद्ध श्रद्धा से नहीं डिगना चाहिए। शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी सम्यक्त्व से चलायमान नहीं होना चाहिए।

भाइयो ! यह न सोचें कि श्रद्धा को सुदृढ़ रखना सिर्फ साधुओं का ही धर्म है, यह श्रावक के लिए भी आवश्यक है। ज्ञाता-सूत्र के आठवें अध्ययन में अरणक (अर्हन्नक) श्रावक का वृत्तान्त आया है। अरणक श्रावक जहाज द्वारा व्यापार के निमित्त परदेश जा रहे थे। वह जिनवचनों पर पूर्ण श्रद्धा रखने वाले थे। उन्हें धर्म से विचलित करने के लिए एक देवता आया और कहने

लगा–ए अरणक ! यदि तू अपने धर्म का परित्याग नहीं करेगा तो मैं तेरे जहाज को इस अथाह सागर में डुबा दूंगा। मगर अरणक श्रावक देवता की इस धमकी से नहीं डरे और अपने धर्म पर अविचल रहे। अन्त में देवता से क्षमा मांगी और कुण्डलयुगल उपहार में दिया।

साधु का पच्चीसवां गुण चारित्रसम्पन्नता है। चारित्र की उज्ज्वलता की वृद्धि करते रहना भी साधु का आवश्यक कर्त्तव्य है।

छव्बीसवां गुण है–वेदना को समभाव से सहन करना। 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' अर्थात् यह शरीर रोगों का घर है। कदाचित् असाता के उदय से कोई रोग हो जाय या अन्य कारण से वेदना उत्पन्न हो जाय तो साधु को समभाव से सहन करना चाहिए। भाइयो ! चाहे समभाव रक्खो, चाहे हाय-हाय करो, असातोदय होने पर वेदना तो भोगनी ही पड़ती है। फिर हाय-हाय करके नूतन कर्मों का बंध करने से क्या लाभ है ? बल्कि हानि ही होती है।

अनेक मुनिराज भीषण से भीषण वेदना को समभाव से सहन करने वाले जिनशासन में हो चुके हैं। जिनके चरित आज भी हमारे सामने हैं और पढ़ने वालों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। घोर से घोर वेदना को सहन करते हुए भी उनके मुख से

तक नहीं निकला। इसी प्रकार की वृत्ति साधुजीवन में आनी चाहिए। वेदना के वशीभूत होकर साधु को समभाव का त्याग नहीं करना चाहिए।

साधु का सत्ताईसवां गुण हैं—मृत्यु को समभाव से सहन करना। आप जानते हैं कि सामान्य मनुष्यों के लिए मृत्यु सब से अधिक विकराल वस्तु है। मौत का नाम सुनते ही बड़े ही बड़े शूरवीर दहल उठते हैं। मगर जिसे आत्मा के अमरत्व पर दृढ़ श्रद्धा है और जो यह मानता है कि मृत्यु शरीर का परिवर्त्तन मात्र है, उसे मृत्यु का आलिंगन करने में किंचित् भी भय नहीं होता। वह जीवन-मरण को समान भाव से देखता है। 'मेरी भावना' में कहा है—

लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।
तो भी न्यायमार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे॥

मौत से डरने वाला मौत से नहीं बच सकता, वरन् उसे मौत जल्दी आ घेरती है। इसके विपरीत, मौत से न डरने वाले को मारना कठिन होता है। ऐसे लोग ही अपने जीवन में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर पाते हैं। वे मर कर भी अमर होते हैं।

भाइयो! दिल्ली में जब हिन्दू-मुसलमानों में मारकाट मच रही थी तब पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—अरे! तुम्हें क्या हो गया है! क्यों तलवारें निकाल कर एक दूसरे का रुधिर

कहा रहे हो ? और इस प्रकार कह कर उन्होंने मारने वालों के हाथ पकड़ लिए। वे तनिक भी भयभीत नहीं हुए।

भाइयो ! जिसकी आत्मा बलवान् होती है; वही मौत के खतरे को झेल सकता है।

यह साधु के सत्ताईस गुण हैं। जिनमें यह गुण होंगे उसी में सच्ची साधुता रहेगी। जिसमें यह गुण नहीं हैं, वह भले ही साधु का वेष पहन कर फिरता हो और चाहे जितना वचनपटु हो, उसमें सच्ची साधुता नहीं है। गुणों के कारण ही साधु की महत्ता है। गुणों से ही निर्जरा होती है। गुण ही आदरणीय हैं। गुणविहीन वेष का कोई मूल्य नहीं। वह स्वपर-वचना मात्र है। ऐसा समझ कर जो साधक इन गुणों को धारण करेंगे; उनका इस लोक में और परलोक में कल्याण होगा।

श्रीपाल चरित—

भाइयो ! यही बात श्रीपालचरित द्वारा आपको समझाई जा रही है। कल बतलाया गया था कि संगीतगोष्ठी में जब श्रीपाल ने अपनी वीणा बजाई तो उसके प्रभाव से सब को निद्रा आ गई। जब वे जागृत हुए तो श्रीपाल के वीणावादनकौशल की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे। सभा में 'वाह-वाह' होने लगी। राजकुमारी गुणसुन्दरी को अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी,

बल्कि कहना चाहिए कि इस पराजय को स्वीकार करने में उसे अपूर्व और अनूठे आनन्द का अनुभव हुआ।

उस समय तो सब लोगों के साथ श्रीपालजी भी अपने स्थान पर चले गए, किन्तु बाद में धूमधाम के साथ गुणसुन्दरी का पाणिग्रहण किया और वहीं सुखपूर्वक रहने लगे।

कुछ दिन व्यतीत हो जाने के पश्चात् श्रीपालजी के पास एक व्यापारी आया। वार्त्तालाप के सिलसिले में उन्होंने उससे भी पूछा–आप देश-विदेश में घूमते हुए कहीं कोई आश्चर्यजनक वस्तु देखी है ? देखी हो या सुनी हो तो हमें भी बतलाओ।

तब व्यापारी ने कहा–कुमार ! यहां से तीन सौ योजन की दूरी पर कंचनपुर नामक नगर है। वह नगर इतना रमणीक और मनोहर है कि उसे साक्षात् देवलोक ही कहना अनुपयुक्त न होगा। वहां वज्रसेन नामक राजा राज्य करता है। उसकी महारानी का नाम कंचनमाला है। उसके चार बेटे हैं और तिलकसुन्दरी नाम की अनुपम सुन्दरी कन्या है। तिलकसुन्दरी के सदृश सुन्दर कन्या दूर-दूर तक नहीं है। उसके चेहरे में ऐसा अनोखा आकर्षण है कि देखने वाले अनिमेश दृष्टि से देखते ही रह जाते हैं, फिर भी उनका दिल नहीं अघाता। उसके गुणों की जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

तिलकसुन्दरी के विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन

किया गया है। सुन्दर सभामण्डप का निर्माण किया गया है। मणि-कांचन की एक पुतली रक्खी गई है। आगत अतिथियों के लिए सुन्दर आसन रक्खे गए हैं। स्वयंवर का मुहूर्त्त आषाढ़ कृष्णा द्वितीया है।

यह समाचार सुन कर श्रीपालजी ने स्वयंवर में सम्मिलित होने का निर्णय कर लिया। समाचार देने वाले को उपहार के रूप में एक कंदोरा भेट किया। व्यापारी चला गया।

तत्पश्चात् उचित समय पर श्रीपाल ने नवपदजी का ध्यान किया और विमलेश्वर देव की सहायता से वे कंचनपुर जा पहुँचे। वहां पहुँच कर फिर कुबड़े का रूप धारण किया और स्वयवरमण्डप के प्रवेशद्वार पर जा पहुँचे। उन्होंने अन्दर प्रवेश करने का उपक्रम किया तो द्वारपाल ने रोकते हुए कहा—भाई, यहीं खड़े होकर देख लो। तुम्हारे जैसों को अन्दर प्रवेश करने की आज्ञा नहीं है। तब श्रीपालजी ने उसे एक आभूषण पकड़ाते हुए कहा—भाई, बोलो मत मुझे अन्दर जाने दो।

भाइयो! इस संसार में पैसा बड़ी बला है। उसमें बड़ा बल है। उसके प्रलोभन में आकर कौन अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं हो जाता? पैसा प्रत्येक से चाकर की तरह काम करवा लेता है।

आभूषण पाकर द्वारपाल खुश हो गया और श्रीपाल बेरोक

ठीक भीतर चले गए। भीतर जाकर उन्होंने देखा कि सब राजा और राजकुमार पृथक् पृथक् शानदार आसनों पर आसीन हैं, मगर उनके लिए कोई आसन खाली नहीं है। तब वे पुतली के पास थोड़ी सी खाली जगह देख कर बैठ गए। इन के कुबड़े रूप को देख राजकुमार पूछने लगे कहिए यहां आपका आगमन कैसे हुआ ? राजकुमारी को वरण करने आए हो ?

श्रीपाल बोले-महाराज जिस प्रयोजन से आप आए हैं, उसी प्रयोजन से मैं भी आया हूं।

यह उत्तर सुन कर सब हँसने लगे। किसी ने कहा—आप जैसे की उपस्थिति में हमें कौन पूछेगा! हमारा आना तो निरर्थक ही हुआ।

कुबड़े श्रीपाल ने अप्रतिभ हुए बिना कहा—संभावना तो यही है। शायद आपकी भविष्यवाणी सफल हो।

इसी समय राजकुमारी तिलकसुन्दरी उत्तम वस्त्राभरणों से सुसज्जित होकर सखियों के साथ स्वयंवर-मण्डप में प्रविष्ट हुई। उसके हाथ में सुन्दर माला थी। आते ही राजकुमारी ने सारे मण्डप पर एक सरसरी निगाह डाली। श्रीपालजी औरों को तो कुबड़े नजर आ रहे थे। मगर राजकुमारी को सुन्दर नवयुवक के रूप में दिखाई दे रहे थे। उनके सौन्दर्य और तेज को देख

कर तिलकसुन्दरी मुग्ध हो गई। उसे श्रीपाल को समानता करने वाला कोई राजा या राजकुमार दिखाई न दिया।

राजकुमारी बीच में बैठे राजाओं और राजकुमारों का परिचय प्राप्त करती हुई आगे बढ़ने लगी और उनकी आशाओं पर पानी फेरती गई। जब वह पुतली के पास पहुंची तो अचानक पुतली बोल उठी—राजकन्ये! सोचती क्या हो! यही तुम्हारे लिए सुयोग्य वर हैं। इन्हीं के गले में वरमाला डाल दो।

पुतली ने तिलकसुन्दरी के मन के अनुकूल ही आदेश दिया और उस आदेश को स्वीकार करके उसने कुबड़े श्रीपाल के गले में माला डाल दी।

सारा स्वयंवरमंडप चकित रह गया। राजा लोग कहने लगे-क्या राजकुमारी का दिमाग खराब हो गया है अथवा जान-बूझ कर अपमानित करने के लिए हम लोगों को आमंत्रित किया गया है?

बहुत-से राजाओं का क्रोध श्रीपाल पर बरसा। वे अपनी-अपनी तलवारें म्यान से निकाल कर उनकी ओर बढ़े और आक्रमण करने को उद्यत हुए। मगर श्रीपालजी कोटिभट थे। उनके सामने कौन ठहर सकता था? अकेले उस वीर ने सब का सामना किया। सामना इतनी वीरतापूर्वक किया गया कि उन्हें विश्वास हो गया कि यह कोई सामान्य मनुष्य नहीं है। जब

का मुहूर्त्त सुधवाया। मुहूर्त्त नियत हो जाने पर राजाओं और राजकुमारों को आमन्त्रणपत्र भेज दिये गए हैं।

इतना कहने के पश्चात् परदेशी पुनः बोला–कुमार! इस अवसर पर आप भी पधारें तो उत्तम हो। मगर दूरी बहुत है और समय थोड़ा है। इतने कम समय में वहां तक पहुँचना कठिन है।

श्रीपाल बोले–ठीक है। मैं स्वयंवर में सम्मिलित होने का प्रयत्न करूँगा।

परदेशी चला गया। श्रीपालजी यथासमय हार के प्रभाव से चुपचाप वहां पहुंच गए जहां स्वयंवरमण्डप था। वे भी दूसरों के समान एक स्थान पर जा बैठे।

सभी कन्याएँ एक साथ अपनी दासियों सहित मण्डप में आईं। मण्डप में सज धज कर आये हुए सैकड़ों राजा और राज-कुमार आसीन थे सब पर उन्होंने दृष्टिपात किया, पर श्रीपालजी की ओर उनका आकर्षण कुछ प्रबल हुआ।

स्वयंवरमण्डप में एक पुतली बनाई गई थी। एक राज-कर्मचारी ने पुतली के हाथ पर सिर रख कर कहा—ऐ पुतली क्या तू इन कन्याओं की समस्याओं की पूर्त्ति करेगी? तू जिस भाग्य-शाली वीर के प्रभाव से कन्याओं के प्रश्नों का समाधान करेगी, उसी के गले में कन्याएँ वरमाला पहनाएँगी।

तत्पश्चात् पण्डिता नामक कन्या पुतली के निकट आई और बोली—'मनवांच्छित फल होई' इस समस्या की पूर्त्ति कीजिए।

समस्या सब के सामने थी, मगर विकट समस्या तो यह थी कि पुतली के मुख से कैसे उसकी पूर्त्ति कराई जाए? फल यह हुआ कि कोई भी उठ कर पुतली के पास नहीं गया। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद श्रीपाल अपने आसन से उठे और पुतली से कहने लगे—ऐ पुतली! जो समस्या उपस्थित की गई है, उसकी पूर्त्ति करो। इतना कहते ही पुतली बोल उठी—

'अर्हन्तादिक नव पद, मन वच सुमरेगा जो कोई।
उस पुण्यवान पुरुष को प्रत्यक्ष मनवांछित फल होई॥'

यह उत्तर सुन कर पण्डिता ने कहा—मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे मिल गया। और यह कह कर वह अपने स्थान पर बैठ गई।

तत्पश्चात् विचक्षणा आई। उसने समस्या रक्खी—'और न देखो कोय।

इस समस्या की पूर्त्ति में पुतली ने कहा—

अर्हत देव सुसाधु गुरु, धर्म दया में होय।
जपो मन्त्र नवकार तुम, और न देखो कोय॥

अर्थात्-सच्चे देव वीतराग हैं, सच्चे साधु ही गुरु हैं

और दयामय धर्म ही सच्चा धर्म है। नमस्कारमन्त्र सब मन्त्रों में प्रधान है। उसका जाप करना चाहिए। यदि यह सब आपको प्राप्त हो गया है तो दूसरी तरफ दृष्टि डालने की आवश्यकता नहीं हैं।

इस प्रकार इस समस्या की भी पूर्त्ति हो गई और कुमारी विचक्षणा सन्तुष्ट होकर अपने स्थान पर बैठ गई। तदनन्तर तीसरी प्रगुणा कुमारी आई। उसने समस्या रक्खी-'कर सफलो अप्पाण।'

श्रीपालजी के आदेश से पुतली ने पूर्त्ति की—

दीजो सुपात्रदान तप संजम उपकार।
करो पर 'कर सफलो अप्पाण'।

इस प्रकार प्रगुणा भी सन्तुष्ट हुई। तत्पश्चात् निपुणा की ओर से एक समस्या पेश की गई-'जितना लिखा ललाड।' इसकी पूर्त्ति पुतली ने की—

रे मन चिन्ताजाल बीच में आतम को मत पाड़।
चाहे यतन कर मिलेगा उतना 'जितना लिखा ललाड़'॥

निपुणा ने प्रसन्न होकर अपना स्थान ग्रहण किया तो दक्षा सामने आई और उसने समस्या रक्खी-'तस सब जग जन दास।'

इस समस्या की पूर्त्ति करती हुई पुतली ने कहा—

जिसने पहले पुण्य कमाया, प्रभु फरमावे खास।
उस नर के बल बुद्धि लक्ष्मी, 'तस सब जग जन दास'॥

भगवान् ने फर्माया है कि जिसने भूतकाल में पुण्य उपार्जन किया है, उसे बल, बुद्धि और लक्ष्मी प्राप्त होती है। सारा संसार उसका दास हो जाता है। यह पूर्त्ति सुन कर दत्ता भी अपने आसन पर बैठ गई। फिर शृङ्गारसुन्दरी आगे बढ़ी और उसने अपनी समस्या उपस्थित की—'रवि पहले ऊगन्त।'

पुतली ने श्रीपाल का आदेश पाकर इस प्रकार पूर्त्ति कही—

जीवित जगमां यश नहिं लीना, यश बिना क्या जीवन्त।
जो नर यश ले अस्त हुआ है, 'रवि पहले ऊगन्त।'

जिसने अपने जीवन में यश नहीं कमाया; उसका जीवन वृथा है। जो मनुष्य यश के साथ मृत्यु का वरण करता है, दुनियां सूर्योदय से पहले उसका नाम लेती है।

भाइयो! सूर्य से पहले दातार उगता है। आज भी कर्ण का नाम अमर है। वह प्रतिदिन सवा मन सोना दान देता था। जब कर्ण महाभारत युद्ध में कौरवों की ओर से पाण्डवों के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित हुए और उनका शरीर क्षतविक्षत हो गया और मृत्यु समीप आ गई तो कृष्णजी ने अर्जुन से कहा—कर्ण मरने की तैयारी में है, किन्तु कैसा दातार था।

अर्जुन ने पूछा—कैसा दातार था ?

कृष्ण बोले—चलो, उसकी दातारी का नमूना अब भी तुम देख सकोगे।

कृष्ण और अर्जुन ब्राह्मण का रूप बना कर कर्ण के निकट पहुंचे और कहने लगे—महाराज कर्ण! हमको भी कुछ दे दो।

कर्ण लड़खड़ाती-सी आवाज में बोले—भाइयो, अब मेरे पास कुछ भी नहीं है कि तुम्हें दे सकूं।

ब्राह्मणरूपधारी कृष्ण ने कहा—राजन्, आपके दांतों में सोना है।

कर्ण—हां, मेरे दांतों में सोना है। उसे तुम निकाल सकते हो।

कृष्ण—हम चोर या डाकू नहीं कि अपने हाथ से ले लें।

कर्ण—ठीक है। तुम मुझे एक पत्थर दे दो तो मैं सोना निकाल कर दे दूँ।

कृष्ण—हम पत्थर दें यह अधर्म नहीं होगा ?

यह सुनकर कर्ण धीरे-धीरे पत्थर की ओर खिसके और पत्थर उठा कर ज्यों ही दांत तोड़ने को तैयार हुए त्यों ही इन्होंने

हाथ पकड़ लिया। ऐसे होते हैं दानवीर। इन्हीं का नाम सूर्य उगने से पहले लिया जाता है।

हां, तो श्रीपाल ने जब पुतली के द्वारा समस्याओं की पूर्त्ति करवा दी तो सभी राजा और राजकुमार आश्चर्य के साथ प्रसन्नता प्रकट करने लगे। आखिर उन कन्याओं के साथ भी श्रीपालजी का विवाह सम्पन्न हो गया।

उस सभामंडप में एक अंगभट्ट नामक विप्र भी उपस्थित था। श्रीपाल का चमत्कार देख कर वह एक बार उनके पास पहुँचा और कहने लगा—राजकुमार! कोलागपुर नगर के राजा पुरन्दर की विजयसुन्दरी नामक पटरानी के उदर से उत्पन्न एक सुन्दरी कन्या है। माता-पिता ने ज्योतिषी से पूछा था कि इस कन्या का पति कौन होगा? तब उसने बतलाया—स्वयंवरसभा में जो राधावेध करेगा, वही इसका पति होगा। इस भविष्यवाणी के अनुसार स्वयंवर का आयोजन किया है। आप भी उसमें सम्मिलित हों और राधावेध करके राजकुमारी को वरण करें।

अंगभट्ट की प्रेरणा से श्रीपालजी उस स्वयंवर में पहुंचे राजा पुरन्दर ने अपनी कन्या की प्रतिज्ञा की घोषणा करते हुए कहा—जो वीर पुरुष इस पुतली की बाईं आंख को कढ़ाव में देख कर अपने बाण से वेध देगा, उसी को राजकुमारी वरमाला पहनाएगी।

इसके बाद कितने ही राजकुमार और राजा राधावेध के लिए उद्यत हुए। सबने पुतली की आंख वेधने के लिए तीर चलाए। मगर कोई भी सफल नहीं हो सका। अन्त में श्रीपालजी अपने आसन से उठे। उन्होंने कढ़ाव में पुतली के प्रतिबिम्ब को देख कर और लक्ष्य साध कर ऐसा तीर मारा कि पुतली की बाईं आंख छिद गई। स्वयंवर सभा तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठी। राजकुमारी ने उनके गले में वरमाला डाल दी। विधिपूर्वक विवाह समारोह सम्पन्न हुआ। श्रीपालजी आनन्द पूर्वक वहां रहने लगे। पहले वाली पत्नियों को भी उन्होंने वहीं बुला लिया।

कुछ काल वहां व्यतीत करके और एक बड़ी सेना बना कर वे वहां से रवाना हुए और कंकू द्वीप में थाणा नामक नगर में श्वसुर ने हार्दिक स्वागत किया और धूमधाम से नगर में प्रवेश कराया। उनके श्वसुर ने एक दिन विचार किया मेरे जामाता श्रीपाल सभी तरह से योग्य हैं; वीर और भाग्यशाली हैं। मुझे राज्य किसी को देना ही है तो इन्हीं को क्यों न दे दूँ। महारानी भी उनके इस विचार से सहमत हो गई। तब उन्हें विधिवत् सिंहासन पर आसीन कर दिया गया। गले में हार एवं मस्तक पर मुकुट पहना दिया गया। चामर ढोरे जाने लगे। सब सामन्तों और सभासदों ने उन्हें नमस्कार किया।

श्रीपालजी अब थाणा नगर के राजा थे और अपनी

रानियों के साथ रहते हुए तथा नीति पूर्वक शासन करते हुए समय व्यतीत कर रहे थे।

अपनी प्रथम पत्नी मैनासुन्दरी से अलग हुए बारह वर्ष होने आए थे। उन्हें अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण आया। चलते समय उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं बारह वर्ष बाद मिलूँगा। अब वह समय सन्निकट आरहा था। इस विचार में श्रीपाल को निद्रा नहीं आई। उनकी पत्नियों ने निद्रा न आने का कारण पूछा तो उन्होंने मैनासुन्दरी का परिचय देते हुऐ पिछला वृत्तान्त उन्हें बतलाया। यह भी कहा कि मुझे अपनी माता और मैना-सुन्दरी से मिलने के लिए जाना पड़ेगा। रानियों ने कहा—प्राण-नाथ। अवश्य जाना चाहिए। आप जैसे महापुरुष को अपना वचन निभाना ही चाहिए। मगर हमारी एक प्रार्थना है। मैनासुन्दरी हम सब की बड़ी बहिन है और सासूजी तो पूज्य हैं ही। अतएव हमें भी उनके दर्शन करने के लिए साथ लेते चलिए।

श्रीपालजी ने पत्नियों की मांग स्वीकार की और यथा समय सेना साथ लेकर अपनी पत्नियों सहित प्रस्थान किया। रास्ते में राजाओं से भेंट लेते गए। इस प्रकार चलते-चलते वे सुपार्श्व नगर पहुंचे। नगर से बाहर पड़ाव डाल दिया गया। कई राजा उनसे मिलने आए पर सुपार्श्व नगर का राजा नहीं आया।

श्रीपालजी को यह बात अखरी। उन्होंने अपने मन्त्री से कहा। मन्त्री ने जानकारी करके कहा–महाराज ! यहां के राजा वज्रसेन की कुमारी तिलकसुन्दरी को सर्प डँस गया है। बहुत उपचार कराने पर भी वह स्वस्थ नहीं हुई। अपनी कन्या की निराशाजनक अवस्था से वह अत्यन्त चिन्तित हैं और संभवतः इसी कारण आपकी सेवा में उपस्थित नहीं हो सके।

श्रीपालजी बोले—अच्छा, वज्रसेन के पास समाचार भिजवा दो कि मैं वहां आ रहा हूं और आपकी कन्या को स्वस्थ किये देता हूं।

थोड़ी देर में ही श्रीपालजी वज्रसेन के पास पहुँचे। उसने हार्दिक स्वागत किया, पर अत्यन्त उदासी के साथ। सर्पदष्ट कन्या मृतक समझी जा चुकी थी और उसके दाहसंस्कार की तैयारी हो रही थी। श्रीपाल को देख वज्रसेन के नेत्रों में आंसू आ गए। वह बोले–महाराज ! मेरा दुर्भाग्य था कि इससे पहले आपका आगमन नहीं हो सका अब खेल खत्म हो चुका है। मेरी प्राण प्रिय कन्या चल बसी है।

श्रीपालजी ने सान्त्वना देते हुए कहा—सब को एक न एक दिन शरीर त्यागना ही पड़ता है। किन्तु कन्या के शरीर में यदि तनिक भी प्राण शेष हैं तो मैं उसे स्वस्थ कर सकता हूँ। मुझे उसके पास ले चलिए।

राजा वज्रसेन यद्यपि निराश हो चुके थे, तथापि अन्तिम उपाय कर देखने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं हुई। श्रीपालजी को साथ लेकर वे कन्या के पास पहुँचे। श्रीपालजी ने नवपद का ध्यान किया और मन्त्र पढकर ज्यों ही कन्या के शरीर पर जल छिड़का, वह उठ कर बैठ गई, जैसे सोकर उठी हो।

इस अद्भुत चमत्कार को देख कर राजमहल में असीम प्रसन्नता फैल गई। जिसने सुना वही चकित हो रहा। लोग श्रीपाल को देवता समझने लगे और उनकी भूरि-भूरि-प्रशंसा करने लगे।

राजा वज्रसेन ने विचार किया–मैं तिलकसुन्दरी की आशा छोड़ चुका था। श्रीपालजी ने उसे जीवनदान दिया है। कन्या विवाह योग्य है। अगर उसका जीवनदाता ही जीवनसहचर बन जाए तो कितना अच्छा हो! राजा ने रानी के सामने अपना विचार प्रकट किया तो वह बोली–मेरे मन में तो पहले से ही यह विचार घूम रहा है। मेरी बेटी को इससे अच्छा दूसरा कौन वर मिलेगा? श्रीपालजी स्वीकार करें तो यह शुभ कार्य शीघ्र कर डालिए।

वज्रसेन श्रीपालजी के पास गए। प्रस्ताव रक्खा और वह स्वीकृत हो गया। उसी समय खूब धूमधाम के साथ विवाह समा-

रोह सम्पन्न हुआ और तिलकसुन्दरी को भी साथ लेकर श्रीपालजी ने आगे प्रस्थान किया।

अपनी विशाल सेना और पत्नियों के साथ चलते हुए श्रीपालजी ने मालव देश की सीमा में प्रवेश किया। चलते-चलते वह उज्जैन के निकट जा पहुँचे। श्रीपालजी के वहां पहुँचने से पहले ही वहां के राजा को यह समाचार मिला कि कोई राजा विशाल सेना के साथ इस ओर बढ़ता आ रहा है। यह समाचार पाकर उसने अपने किले को शस्त्रों से सुसज्जित कर लिया। युद्ध का वातावरण बन गया। श्रीपालजी ने नगर को घेर लेने का आदेश दे दिया। परन्तु उसी समय उन्हें स्मरण आया कि आज सप्तमी है और कल अष्टमी के दिन तक अपने दिये वचन के अनुसार मुझे माता और मैनासुन्दरी से मिलना चाहिए। पर मिलने से पूर्व गुप्त रूप से देख तो लेना चाहिए कि वे किस स्थिति में हैं।

इच्छा करते ही हार के प्रभाव से श्रीपालजी वहां जा पहुंचे जहां रानी कमलप्रभा और मैनासुन्दरी थी। पहुँच कर चुप-चाप खड़े हो गए और किवाड़ के छिद्र में से अन्दर का दृश्य देखने लगे। भीतर प्रकाश हो रहा था और कमलप्रभा तथा मैना-सुन्दरी वार्त्तालाप कर रही थीं। कमलप्रभा कह रही थीं—बेटी! श्रीपाल बारह वर्ष में अष्टमी के दिन लौटने को कह कर गया था।

कल ही अष्टमी है, पर वह तो अब तक नहीं लौटा। उसी को देखने के लिए मैं जीवित हूँ।

मैनासुन्दरी ने ढाढस बँधाते हुए कहा-माताजी ! आप चिन्ता न करें। धर्म हमारा सहायक है तो कोई अनिष्ट नहीं हो सका। सब प्रकार से आनन्द ही आनन्द होगा। भगवान् के नाम का जाप करने से सब भय दूर हो जाते हैं।

इसी समय मैनासुन्दरी की बाईं आंख फड़क उठी। उसने कमलप्रभा से कहा-मां, मेरी बाईं आंख फड़क रही है और हृदय में अपूर्व-सा उल्लास उमड़ रहा है। आपके बेटे का शीघ्र का आगमन होने की यह सूचनाएँ हैं।

कमलप्रभा बोली—बेटी! तेरी वाणी सफल हो।

श्रीपाल यह वार्त्तालाप सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनका हृदय भी उमड़ आया। उन्होंने सोचा—यह दोनों मुझसे मिलने के लिए बड़ी उत्कंठित हो रही हैं तो मेरा गुप्त रहना योग्य नहीं। अब प्रकट हो जाना चाहिए। यह सोच कर श्रीपाल बोल उठे-'मां, किवाड़ खोल।'

उपर्युक्त शब्द सुनते ही दोनों आश्चर्य में डूब गईं। उनके कानों में मानों अमृत घुल गया। हृदय शीतल हो गया। उन्होंने श्रीपाल की आवाज पहचान ली।

द्वार खुला और श्रीपाल अन्दर पहुंच कर मां के चरणों में गिर गए। माता ने उन्हें कलेजे से लगा लिया। उसकी आंखों से प्रेमाश्रु झरने लगे, जैसे वह श्रीपाल को मोतियों का हार पहना रही हो। मैनासुन्दरी ने उनके चरणों का स्पर्श किया। वह दृश्य इतना भावमय था कि शब्दों द्वारा चित्रित नहीं हो सकता।

थोड़ी देर ठहर कर श्रीपाल बोले—मां, अभी मैं गुप्त रूप से यहां आया हूं, पर साहूकार की तरह आना चाहता हूं। और वे माता को कांधे पर बिठला कर तथा मैनासुन्दरी का हाथ पकड़ कर हार के प्रभाव से अपने तम्बू में लौट आए। उन्होंने अपनी पत्नियों को कहा–लो. यह हैं तुम्हारी सासूजी और यह हैं तुम्हारी बड़ी बहिन मैनासुन्दरी, जिनका तुम दर्शन करना चाहती हो।

सब पत्नियों ने कमलप्रभा को प्रणाम किया। मैनासुन्दरी को गले लगाया। श्रीपालजी ने सब का परिचय कराया।

श्रीपालजी किस प्रकार अपने श्वसुर से मिलते हैं और किस प्रकार अपना राज्य प्राप्त करते हैं, यह आगे सुनने से विदित होगा।

केन्टोनमेन्ट बैंगलोर
१५–१०–५६

ओली तप

[६]

भाइयो !

आसौजी पूर्णिमा और कार्ति की प्रतिपदा के दिन शास्त्र का स्वाध्याय वर्जित है। अतएव दो दिन तक शास्त्रवाचन नहीं होगा।। नीतिकारों का कथन है कि हमेशा इतनी बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

को देशः कानि मित्राणि, कः कालः कौ व्ययागमौ।
कश्चाहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः॥

इस जगत् में असंख्य प्रकार के प्राणी हैं, किन्तु मानव जैसी विचार शक्ति किसी दूसरे प्राणी में नहीं है। अतएव उसी को विचार करने की प्रेरणा की जाती है। तो उसे क्या विचार करना चाहिए? अपने को ऊँचा उठाने के लिए और अभीष्ट कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए इन बातों का विचार करना आवश्यक है—

सर्वप्रथम यह विचार करना है कि जिस देश में मैं रह रहा हूं, वहां का रहन-सहन, आचार-विचार एवं रीति-भांति कैसी है ? जल-वायु कैसा है ? इन बातों को ध्यान में रख कर जो आहार-बिहार या व्यवहार करेगा, वह सुखी और स्वस्थ रह सकेगा।

भगवान् महावीर ने अनार्य देश में विचरण करने का साधुओं को निषेध किया है इसका कारण यह है कि अनार्य देश की प्रजा सत्संकारों से विहीन होती है। वहां का खान-पान इस ढंग का है कि साधु के संयम का ठीक तरह निर्वाह नहीं हो सकता।

बहुत-से देश ऐसे भी हैं जहां अन्न का अभाव है। उन देशों की प्रजा मांस खाकर ही जीवन-निर्वाह करती है उनके हृदय दया से शून्य हैं। उन्हें प्राणी-अहिंसा का उपदेश देने से कोई लाभ होने की संभावना नहीं। ऐसे देशों में साधुओं का बिहार न होना ही अच्छा है।

इसी प्रकार विभिन्न देशों का जल-वायु विभिन्न प्रकार का होता है। उसे समझ कर व्यवहार करने वाले स्वस्थ रह सकते हैं। अतएव देश का विचार करना आवश्यक है।

दूसरी विचारणीय बात है—मित्रों का विचार करना। आप जिस देश में रहते हैं, उस देश में कौन ऐसे लोग हैं जो

आवश्यकता पड़ने पर आपके सहायक हो सकते हैं? किनसे आपको सत्परामर्श मिल सकता है? कौन आपका सच्चा हितैषी है?

भाइयो! अगर आप सम्पन्न और समर्थ हैं तो सैकड़ों लोग आपका मित्र होने का दावा करेंगे, मगर यह समझना गलत होगा कि वास्तव में ही वे आपके मित्र हैं। स्वार्थी लोग मित्र होने का दावा करते हैं केवल अपना मतलब गांठने के लिए। जब मतलब पूरा नहीं होता तो शत्रु बन जाते हैं। कई लोग मित्र बन कर मनुष्य को कुपथ पर ले जाते हैं और उसका सर्वनाश करके छोड़ते हैं। ऐसे लोगों की मैत्री से बचना चाहिए। सच्चा कौन हैं? जो अपने मित्र को दुर्व्यसनों से बचाता है, कुपथगामी होने से रोकता है और हितकर पुण्य-धर्म के कार्यों में प्रेरणा करके प्रवृत्त करता है, जो अपने लाभ की उपेक्षा करके मित्र के लाभ को प्रधान मानता है और जो सकट के समय किनारा न काट कर साथ देता है, वही सच्चा मित्र है।

भगवान् का कथन है कि—हे आत्मन्! तू ही तेरा सच्चा मित्र है; दूसरे मित्रों की क्यों अभिलाषा करता है? वास्तव में मनुष्य को अपने बल और पुरुषार्थ पर ही भरोसा करना चाहिए। जो दूसरों की शक्ति पर निर्भर रहता है उसे अन्त में धोखा खाना पड़ता है। मगर संसार में सब प्रकार के लोग हैं। सब में इतना सामर्थ्य नहीं होता कि वे आत्मनिर्भर बन सकें। उन्हें दूसरों को

मित्र बनाना पड़ता है, फिर भी पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रख कर ही मित्र बनाना चाहिए।

तो जो मनुष्य सोच-समझ कर मित्र बनाता है, उसे समय पर सहायता मिलती है, अच्छी सलाह मिलती है और वह अपने को एकाकी, असहाय अनुभव नहीं करता।

आगे नीतिकार ने बतलाया है कि काल का भी विचार करना चाहिए। प्रत्येक कार्य के लिए अनुकूल काल की अपेक्षा रहती है। काल का प्रभाव कम नहीं है। कहा है–

कालो हि दुरतिक्रमः।

अर्थात्–काल के प्रभाव को जीतना अत्यन्त कठिन है। समय का विचार न करके प्रवृत्ति करने वाले को प्रायः सफलता नहीं मिलती। यही कारण है कि लोग मौसिम का विचार करके बहुत-से कार्य करते हैं। किसान काल का विचार करके धान्य बोता है और जिस काल में जो बोना चाहिए, उस काल में उसी को बोता है। आषाढ़ में गेहूँ-चना बोने वाला और आसौज-कार्त्तिक में ज्वार–मक्की बोने वाला किसान मूर्ख कहलाएगा और कुछ भी लाभ नहीं उठा सकेगा।

आप लोग भी मौसिम के अनुसार वस्त्र पहनते हैं और ऐसा करके शरीर की रक्षा करते हैं।

काल के विचार में बहुत-सी बातों का समावेश हो जाता है। मनुष्य को भूत, वर्त्तमान और भविष्य काल का भी विचार करना चाहिए। भूतकाल के विचार से हम बहुत-सी शिक्षाएँ ले सकते हैं। वर्त्तमान का विचार करने से बहुत-सी परेशानियों से बच सकते हैं।

वर्त्तमान पर विचार करते हैं तो प्रतीत होता है कि इस समय में लोगों में घोर अनैतिकता फैल रही है। लोगों की उच्च भावनाएँ नष्ट होती जा रही हैं, अप्रामाणिकता, स्वार्थवृत्ति और भ्रष्टाचार दिनोंदिन बढ़ रहा है। आध्यात्मिकता की दृष्टि से देश कंगाल हो रहा है। किसी भी प्रकार से अधिक से अधिक धन कमाने की लालसा तेजी के साथ बढ़ रही है। नीति से या अनीति से, बस धन मिलना चाहिए। धन के लिए लोग कोई भी पाप करने को तैयार हैं। झूठ बोलते हैं, कह कर मुकर जाते हैं और क्या नहीं कर रहे हैं। जीवन का नैतिक स्तर गिरता जाता है। अगर यही दशा रही तो इस देश का क्या भविष्य होगा? यह विचारणीय है। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति आज इस चिन्ता से परेशान है। इस गिरावट का इलाज खोजना जरूरी है। इस प्रकार जो वर्त्तमान का विचार करते हैं; वे ही भविष्य को सुधार सकते हैं।

भाइयो! प्रत्येक कार्य करने से पूर्व विचार कर लो कि इस कार्य का हमारे भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यदि भविष्य का

विचार नहीं किया और यों ही आंख मीच कर चलते रहे तो भविष्य अन्धकारपूर्ण हो जाएगा। अनीति में प्रकाश कहां है? वहां तो अन्धकार ही अन्धकार है। अतएव भविष्य को प्रकाशमय बनाने के लिए नैतिकता और धार्मिकता की शरण लो।

यह भी सोचने की आवश्यकता है कि-मैं कौन हूँ? क्या मैं शरीर ही हूँ या शरीर से भिन्न मेरी सत्ता है? अगर मैं शरीर ही होता तो मुर्दे में और मुझमें कोई अन्तर नहीं होना चाहिए था। मगर दोनों में आकाश पाताल जितना अन्तर है। इससे यही सिद्ध होता है कि मैं शरीर से भिन्न हूं-आत्मा हूँ। शरीर नाशवान् है, आत्मा अविनाशी है। शरीर जड़ है, आत्मा चेतन है। कर्म के अनुसार आत्मा शरीर को ग्रहण करता है और त्याग देता है। आत्मा परलोक में जाने वाला, ज्ञाता, द्रष्टा और ज्योतिः-पुञ्ज है।

इस आत्मा में क्या शक्ति है? ज्ञानी जनों का कथन है कि आत्मा में अनन्त शक्ति निहित है। जो शक्ति तीर्थङ्करों में थी, वही प्रत्येक आत्मा में है। मगर वह शक्ति कर्मों के आवरणों से दबी हुई है। उसे प्रकट करने की आवश्यकता हैं। किस उपाय से वह प्रकट हो सकती है? यह सब विचारना चाहिए।

व्यावहारिक दृष्टि से भी अपनी शक्ति की परीक्षा करके ही कोई कार्य करना उचित होता है। मेरा शरीर तप के योग्य है

या नहीं ? मैं अमुक कार्य करने में सशक्त हूँ या नहीं ? ऐसा सोच कर कार्य करने वाले ही बुद्धिमान् कहलाते हैं। उन्हीं को सफलता मिलती है। कभी-कभी शारीरिक दुर्बलता वाले भी बड़ी तपस्या कर लेते हैं, मगर उनका मानसिक बल होता है। तो जिस कार्य के लिए जिस बल की आवश्यकता है, उस कार्य को करते समय उसी प्रकार के बल का विचार करना होता है। जिसके पास आर्थिक बल नहीं है, वह लाखों का व्यापार करने चले तो नतीजा क्या होगा ? उसका शारीरिक और मानसिक बल वहां काम नहीं आ सकता। व्यापार के क्षेत्र में तो अर्थबल ही काम आएगा।

भाइयो ! इस प्रकार अपनी शक्ति को तोल कर जो कदम उठाते हैं, उन्हें असफलता का मुख नहीं देखना पड़ता और निराशा का दुःख नहीं उठाना पड़ता।

बहुत बार मनुष्य शक्ति होने पर भी अपने को अशक्त अनुभव करता है; क्योंकि वह अपनी शक्ति से अनभिज्ञ होता है। कई बार शक्ति न होने पर भी उत्साह के आवेग में आकर मनुष्य कोई काम करने पर उतारु हो जाता है। उसे अन्त में विफल होना पड़ता है। अतएव अपने विषय में कोई भ्रान्त धारणा न बनाओ और शुद्ध बुद्धि से शक्ति की परीक्षा करो।

एक बात, जो उक्त नीतिश्लोक में मध्य में आई है। मैं

अन्त में ले रहा हूं। नीतिकार कहता है—मनुष्य को अपने आय-व्यय का भी विचार करते रहना चाहिए। यह बात आप गृहस्थों से ही सम्बन्ध रखती है। गृहस्थ को धर्म की पात्रता प्राप्त करने के लिए जो नियम बतलाए गए हैं; उनमें सबसे पहला नियम यह है कि वह न्याय से ही धनोपार्जन करे—अर्थलाभ के लिए अनीति का आश्रय न ले। जीवन में जब एक बार अनैतिकता घुस जाती है तो उसका निकलना बड़ा कठिन होता है। अतः धन जैसी प्रलोभन की वस्तु के लिए भी अनीति को प्रविष्ट नहीं होने देना चाहिए। आखिर जो लोग अनीति का अवलम्बन न करके और नीति पर दृढ़ रह कर आजीविका करते हैं, वे भी अपना जीवन निर्वाह तो करते ही हैं और ऐसे लोग दुःखी भी नहीं देखे जाते। फिर अनीति का आश्रय लेकर जीवन को क्यों मलीन बनाना चाहिए?

जिस मनुष्य के जीवन में संयमशीलता नहीं होती, जिसकी वासनाएँ उच्छृंखल होती हैं, लालसाएँ बढ़ी होती हैं, वे अपनी आवश्यकताएँ बढ़ा लेते हैं। उनकी आवश्यकताएँ इतनी चढ़ जाती हैं कि व्यय बहुत होता है और आमद उतनी नहीं होती। ऐसी स्थिति में मनुष्य अनीति का सहारा लेकर अपनी आय बढ़ाने का प्रयत्न करता है। अतएव सद्गृहस्थ के लिए यह बतलाया गया है कि वह अपने आय व्यय पर विचार कर लिया करे। जो अपनी आय का विचार करके व्यय करता है, उसे

कभी अशान्ति नहीं होती। वह कभी अभावग्रस्त नहीं होता। उसे अन्याय और अधर्म के पथ का अनुगामी नहीं बनना पड़ता।

आज सर्वत्र लोगों ने अपनी आवश्यकताओं में अनाप-सनाप वृद्धि कर ली है। इन निरर्थक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए न्यायोचित उपाय नहीं दिखता तो अन्याय का सहारा ले रहे हैं। यह घूंसखोरी, मिलावट और दूसरे प्रकार का भ्रष्टाचार आवश्यकताओं की वृद्धि का ही फल है।

उच्च और पवित्र जीवन व्यतीत करने वालों को चाहिए कि वे अपनी आमदनी का विचार करके ही अपना 'बजट' बनाएँ और शान्ति एवं नीति से जीवन निर्वाह करें।

भाइयो ! इन छह बातों पर विचार करने के लिए अपने चित्त को स्थिर बनाना चाहिए। जैसा वातावरण होता है उसी के अनुसार चित्त के विचार बनते हैं। अतएव उचित और पवित्र वातावरण में रहना आवश्यक है तीर्थंकरों की वाणी विचारों को स्थिर बनाने के लिए बोलती है-ऐ मानव ! जब तक तू अपने विचारों को स्थिर नहीं बनाएगा, तब तक कुछ भी नहीं कर सकेगा।

सरोवर के पैंदे में एक हार पड़ा है। पानी निर्मल हो परन्तु हवा चल रही हो तो वह हार दिखाई न देगा, क्योंकि हवा के कारण जल स्थिर नहीं रहता। जब हवा चलना बंद हो जाता और जल में स्थिरता आ जाती है तो वही दृष्टिगोचर होने

फैंकने से अपना ही मुख खराब होता है। अतएव क्रोध का परित्याग करके उनकी बात मान लेना ही उचित जान पड़ता है।

बुद्धिमान् और दूरदर्शी मन्त्री के परामर्श को स्वीकार करके राजा ने उत्तर दे दिया-मुझे आपकी शर्त स्वीकार है। मैं आपके लिखे अनुसार ही मिलने आऊँगा।

राजा कंधे पर कुल्हाड़ा रख कर मन्त्री के साथ श्रीपाल से मिलने आए। श्रीपाल उनके आगमन की सूचना पा कर उनसे मिलने के लिए सामने गए। मिलन होने पर श्रीपाल ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। डेरे में आने पर उन्हें उच्च आसन पर बिठलाया।

श्रीपाल के इस व्यवहार में कहीं भी अहंकार की दुर्गन्ध नहीं थी। अपमान करने का भाव लक्षित नहीं होता था। जैसे एक स्नेही से दूसरा स्नेही मिलता है, उसी प्रकार श्रीपालजी प्रभुपाल से मिल रहे थे। उनके चेहरे पर तनिक भी विकार नजर नहीं आता था। यह सब देख कर प्रभुपाल चकित हो रहे थे। उसी समय मैनासुन्दरी अन्दर से निकल कर आई और पिता को नमस्कार करके बोली—'पिताजी, आपने जिसके साथ मेरा लग्न किया था, ये वही हैं।'

राजा सब समझ गया, उसने प्रसन्न होकर मैनासुन्दरी को गले लगाया और श्रीपालजी के चरणों में गिरने को उद्यत हुआ।

श्रीपालजी ने बीच में ही रोक कर कहा—पिताजी, आप मुझे लज्जित न कीजिए। आप मुझे जिस स्थिति में देख रहे हैं, उसका श्रेय मुझे नहीं। यह तो धर्म का ही प्रताप है। गुरु महाराज ने नवपदजी का ध्यान बतलाया और उसी के प्रभाव से यह ठाठ हुआ है।

बाद में प्रभुपाल की दोनों पटरानियां भी मिलने आईं और श्रीपाल का विराट् ऐश्वर्य देखकर आनन्द का अनुभव करने लगीं। इस प्रकार समस्त सम्बन्धी जन परस्पर मिले और सभीने एक दूसरे के ऊपर हार्दिक प्रेम के प्रसून बरसाए।

ऐसे हर्ष और उल्लास के अवसर पर नाच-गान की इच्छा हो जाना स्वाभाविक है। श्रीपाल के साथ नाटय मंडली चल रही थी। अतएव उन्होंने नृत्य की आज्ञा दी। प्रथम यूथ की जो महिला-प्रधान थी, उसे यह आज्ञा दी गई, मगर पूर्वोक्त दृश्य देख कर उसका मन उदास हो रहा था। उसे अपने पूर्वजीवन की स्मृति हो आई थी। मगर जो दूसरे के अधीन है, उसकी इच्छा या अनिच्छा से क्या होता है? उसे तो दूसरे के आदेश पर चलना ही पड़ता है। अतएव इच्छा न होने पर भी वह रंगमंच पर आई। उसने सर्वप्रथम यह पद्य पढ़ा—

कहँ मालव कहँ शंखपुर, कहां बबर कहँ नट।
सुरसुन्दरि नट्यो पती, किया दैव अनघट॥

भाइयो ! जिसने यह पद्यपाठ किया वह और कोई नहीं सौभाग्यसुन्दरी की पुत्री और श्रीपालजी की साली सुरसुन्दरी थी। वह अपने भाग्य को कोसती हुई कहती है—कहां तो उज्जयिनी-नरेश की कन्या और शंखपुर के राजा से ब्याही गई। कोई बब्बर देश के राजा की कन्या से विवाह करता है और किसी को नर्तकी का वेष धारण करना पड़ता है ! हाय दैव ! मुझे आज यह आजीविका अंगीकार करनी पड़ी।

'सुरसुन्दरी' का नाम सुन कर और पद्य के आशय पर लक्ष्य करके सब चौंक उठे। उसकी माता सौभाग्यसुन्दरी के हृदय में जैसा भाला लग गया। उसने सुरसुन्दरी को अपने पास बुला कर पूछा—बेटी, तेरा यह क्या हाल हो गया ? तब उसने अपना वृतान्त सुनाया—

माताजी ! आप लोगों ने तो मेरा विवाह अच्छा ठिकाना देख कर ही किया था, परन्तु भाग्य प्रबल होता है। विवाह के बाद मेरा नगरप्रवेश होने लगा तो पण्डितों ने कहा—अभी मुहूर्त्त अच्छा नहीं है। आप प्रवेश न करें। पण्डितों का कहना मान कर हमें नगर के बाहर ही रात बिताने के लिए ठहरना पड़ा। मगर रात्रि में डकैत आ धमके। उन्होंने सारी सम्पत्ति लूट ली और मुझे भी पकड़ लिया। मेरे पति मुझे असहाय छोड़ कर भाग गए। डाकू मुझे पकड़ कर नेपाल ले गए और मैं एक सार्थ-

वाह को बेच दी गई। सार्थवाह मुझे बब्बर देश के राजा महा-काल के यहां ले गया। परन्तु उसने मुझे खरीदने से इन्कार कर दिया तो मैं एक वेश्या के हाथ बेच दी गई। वेश्या ने धन कमाने के लिए मुझे नृत्य कला सिखलाई। नृत्य सीख कर मैं राजा के यहां नाचने जाने लगी। राजा ने नृत्य कला से प्रसन्न होकर वेश्या से मुझे खरीद लिया। जब राजा महाकाल की कन्या मदन-सेना का श्रीपालजी के साथ विवाह हुआ तो मैं इन्हें दहेज में दे दी गई। इनके साथ रहते मुझे काफी समय हो गया। अभी तक किसी को मैंने अपना परिचय नहीं दिया है। आज नृत्य करने को जब विवश हुई तो परिचय देना पड़ा। न देती तो आप सब के सामने भी मुझे नाचना पड़ता।

यह लोमहर्षक जीवन वृत्तान्त सुन कर सब के सब दुःख में डूब गए। श्रीपाल ने कहा—सुरसुन्दरी ! तुमने आज तक मुझे क्यों अन्धेरे में रखा ? क्यों नहीं बतलाया कि मैं भाग्य के चक्कर में पड़ गई हूं। मगर अब भी चिन्ता मत करो, सब ठीक हो जाएगा।

श्रीपालजी ने उसी समय दूत को बुला कर कहा—जाओ। हमारे साढ़ू राजा अरिदमन को आदर के साथ बुला लाओ। दूत गया, अरिदमन आए और सुरसुन्दरी के साथ फिर उनका संयोग स्थापित हो गया। हर्ष के इस प्रसंग पर श्रीपालजी ने

अरिदमन को विपुल सम्पत्ति उपहार-स्वरूप प्रदान की जिससे वह भी समृद्धिशाली नरेशों में गिना जाने लगा। तत्पश्चात अरिदमन और सुरसुन्दरी को जैन धर्म धारण करवा कर सन्मान पूर्वक विदा किया।

श्रीपालजी के पुराने साथी सात सौ कोढ़ियों को जब पता चला कि वे बारह वर्ष बाद बहुत से राजाओं की कन्याओं से विवाह करके और प्रचुर ऋद्धि सिद्ध प्राप्त करके लौट आए हैं तो वे भी उन से मिलने आए। श्रीपालजी उसी पुराने भाव से हर्ष के साथ उनसे मिले। उन्हें देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सब को उनकी योग्यता के अनुसार सेना में अच्छे पदों पर नियुक्त कर लिया।

तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुराने मन्त्री मतिसागर को, जो चम्पा का मन्त्री था और जिसने महारानी कमलप्रभा को देश त्याग देने की सलाह देकर श्रीपालजी की प्राणरक्षा की थी, अपने पास बुलवाया और प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार उन्होंने अपने सभी उपकारकों का यथोचित सन्मान कर के अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया।

एक दिन मतिसागर ने राजा श्रीपाल से कहा—महाराज! आपने इतने कम समय में जो विशाल वैभव और सैन्य बल अर्जित किया है, वह विस्मयजनक है। आज आप प्रचण्ड शक्ति

से सम्पन्न हैं। अतएव आपको अपने पैत्रिक राज्य पर अधिकार करना चाहिए। इसके बिना आपकी शोभा नहीं है।'

श्रीपालजी को मन्त्री की सलाह पसंद आई। उन्होंने उसी समय चतुर्मुख नामक दूत को बुला कर आदेश दिया-तुम चम्पा नगरी जाओ। वहां मेरे काका राज्य करते हैं। उन्हें जय-विजय से वधाना और कहना—महाराज! आपने श्रीपाल को कला सीखने भेजा था सो वह सीख कर और विशाल सेना साथ में लेकर आ गया है। इधर आप बूढ़े हो गए हैं। अतः अब आप राज्य का मोह त्यागिए और श्रीपाल को अवसर दीजिए। ऐसा करना ही आपके लिए हितकर है। अगर आपने ऐसा न किया तो आपको हानि उठानी पड़ेगी, प्रतिष्ठा गँवानी पड़ेगी और पश्चात्ताप करना पड़ेगा। जुगनू सूर्य की बराबरी नहीं कर सकता। अच्छा होगा कि आप श्रीपाल से मिलने के लिए पधारें। वहां आपका स्वागत होगा और प्रेमभाव बना रह जाएगा।

दूत ने जाकर जब यह संदेश सुनाया तो काकाजी के दिमाग का पारा चढ़ गया। उसने उत्तर दिया—अरे दूत! तू अपने राजा से कह देना कि राज्य मांगने से नहीं मिलता, तलवार के बल से प्राप्त किया जाता है। बल हो तो उसकी आजमाइश करने को युद्धक्षेत्र में आ जाए। श्रीपाल से मैं वहीं मिलूँगा। वह मेरा लड़का नहीं, शत्रु है।

दूत ने लौट कर यह समाचार श्रीपालजी को कहा तो उन्होंने मन्त्री से परामर्श किया—अब क्या करना चाहिए ? मन्त्री ने कहा—महाराज ! अब विचार करने का अवकाश ही कहां है ? वह आपको शत्रु समझता है और युद्ध का निमन्त्रण दे रहा है तो इस निमन्त्रण को स्वीकार करके उसे सबक सिखलाना चाहिए इसके बिना उसका अभिमान दूर न होगा ।

श्रीपालजी ने उसी समय सेनापति को बुलवाकर सेना को तैयार करने का आदेश दे दिया। यथासमय सेना के साथ वह रवाना हुए और चम्पा नगरी के बाहर पड़ाव डाल कर ठहर गए। वीरदमन यह समाचार पाते ही सेना लेकर मैदान में आ पहुँचा। दोनों ओर के वीर सैनिक आपस में भिड़ गए। घोर युद्ध छिड़ गया। युद्ध में वीरदमन वंदी बना लिया गया। वीरदमन को वंदी बना देख उसकी सेना तितर-वितर हो कर भाग खड़ी हुई। वीर-दमन श्रीपालजी के सामने लाया गया।

वीरदमन को अपने समक्ष देख कर श्रीपालजी ने विचार किया—यह कितना ही अत्याचारी क्यों न हो; आखिर है तो मेरा काका ही। इसके साथ मुझे अच्छा ही व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकार विचार कर उन्होंने वीरदमन को बन्धनमुक्त करवा दिया और यथोचित आदर-सत्कार किया।

वीरदमन को ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी। अतएव

वह सद्व्यवहार देख कर लज्जित हो गया और सोचने लगा—अगर मैंने श्रीपाल की बात मान ली होती तो मेरी प्रतिष्ठा बनी रह जाती। प्रतिष्ठा गँवा कर इस मान-सम्मान के साथ जीवित रहने की अपेक्षा तो मृत्यु का आलिंगन करना कहीं अधिक अच्छा है। आज श्रीपाल का यश चारों दिशाओं में फैल गया है। मैं उसके अधीन रह कर किसी को कैसे मुख दिखलाऊँगा? इसके अतिरिक्त युद्ध में मैंने सैकड़ों मनुष्यों का वध किया है। इस घोर पाप से मेरा कैसे छुटकारा होगा?

इस प्रकार विचार करने के पश्चात् वीरदमन ने निर्णय किया कि अब तो साधु बन जाने से ही मेरे जीवन का उद्धार हो सकता है। धर्म ही मेरी गिरी हुई प्रतिष्ठा को बढ़ा सकता है। धर्म का सहारा लेने से ही मेरा इह जीवन और भविष्य मंगलमय बन सकता है।

इस प्रकार भावना शुद्ध होते ही वीरदमन को जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने भागवती दीक्षा अंगीकर कर ली। वह वीरदमन राजा के बदले इन्द्रियदमन मुनि बन गए। श्रीपाल ने परिवार के साथ उन्हें नमस्कार किया और उनके त्याग की प्रशंसा की। वे विहार कर अन्यत्र चले गए।

इधर श्रीपालजी ने धूमधाम से, उल्लास और उत्साह के वातावरण में नगर-प्रवेश किया। नागरिकों ने अपने-अपने मकान

बड़े चाव से सजाए। स्थान-स्थान पर सुन्दर तोरण बनाए गए। महाराज श्रीपाल के नगर प्रवेश के उस अनुपम दृश्य को देखने के लिए अपार जनसमूह एकत्र हो गया। राजमार्ग के दोनों ओर तिल धरने को जगह न रही। महिलाएँ भवनों के छत पर खड़ी होकर मंगलगान करने लगीं और पुष्पवर्षा करने लगीं। जनता कहने लगी–राजा सिंहरथ के सपूत श्रीपाल धन्य हैं जिन्होंने अपने ही पुरुषार्थ और पराक्रम से इतना महान् अभ्युदय प्राप्त किया। इस प्रकार जनता श्रीपाल को देखकर प्रसन्न हो रही थी और श्रीपाल जनता को देख कर प्रसन्न हो रहे थे।

राजमहल के प्रधान द्वार पर पहुँच कर प्रवेशयात्रा समाप्त हुई। श्रीपालजी अपने परिवार के साथ महल में रहने लगे। वीरदमन के पुत्र गजपति को भी उन्होंने राज्य देकर सन्मानित किया। धवल सेठ के लड़के को कौशाम्बी का नगरसेठ बना दिया। अन्य उपकारियों को भी यथायोग्य पद प्रदान किए।

इस प्रकार पैत्रिक राज्य प्राप्त करने के पश्चात् वे धर्म का विशेष रूप से आचरण करने लगे। धर्म पर उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा हुई। श्रावक व्रत अंगीकार किए तदनन्तर उन्होंने अपने राज्य में अहिंसा की घोषणा की और तमाम कत्लखाने बंद करा दिए। कारागार में पड़े राजाओं और बन्दियों को मुक्त कर दिया। सर्वत्र न्याय की प्रतिष्ठा की। प्रजा अमन-चैन से रहने लगी।

इधर वीरदमन मुनिराज को तपस्या करते-करते अवधिज्ञान की प्राप्ति हो गई। देश-देश में भ्रमण करते हुए एक बार वे चम्पा नगरी में पधारे। श्रीपालजी सपरिवार मुनिराज की धर्म-देशना श्रवण करने पहुँचे। मुनिराज ने देशना करते हुए कहा:—

भव्यात्माओ। सौभाग्य से तुम्हें यह मानवभव प्राप्त हुआ है। आर्य क्षेत्र, आर्य कुल, परिपूर्ण इन्द्रियां, धर्म को सुनने-समझने की योग्यता—यह सब चीजें तीव्रतर पुण्य के योग से ही मिलती हैं। इन सबको प्राप्त करके विवेकवान् पुरुषों को ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिए जिससे जन्म-मरण का अनादिकालीन चक्र समाप्त हो और अक्षय अव्याबाध एव अनन्त सुख की प्राप्ति हो सके।

इस प्रकार की धर्मदेशना श्रवण करने के पश्चात् लोग जब चले गए तो श्रीपालजी ने निवेदन किया—कृपासिन्धो! मैं अपने पूर्व वृत्तान्त को जानना चाहता हूं। किस कारण मुझे घोर कष्ट सहने पड़े और किस कारण से यह समृद्धि प्राप्त हो सकी?

मुनिराज ने अपनी गंभीर वाणी से कहा—राजन्! यह सब कर्मों की खिलवाड़ है। वही जीव को नाना प्रकार के नाच नचाते हैं।

इसी भरत क्षेत्र में हिरणपुर नामक नगर था। वहां के राजा श्रीकान्त को शिकार खेलने का बहुत शौक था। उसके हृदय

में लेश मात्र भी करुणा नहीं थी। परन्तु उसकी पत्नी जैन धर्म पर श्रद्धा रखती थी। वह अपने पति को समझाया करती नाथ ! इन बेचारे मूक निरपराध और घास-पात पर निर्वाह करने वाले पशुओं पर गोली चलाना उचित नहीं। जो शत्रु-मुँह में तिनका दबा कर आ जाता है, राजा उसे क्षमा कर देते हैं। ये बेचारे तो तिनके ही खाते हैं। इनका निष्कारण वध करना नीतिसंगत नहीं है। यह क्षत्रियवीर का धर्म नहीं। इससे आपको भविष्य में दुःख उठाना पड़ेगा।

रानी के इस प्रकार समझाने पर भी राजा के हृदय पर कुछ असर नहीं हुआ। एक बार वह अपने सात सौ आदमियों को साथ लेकर शिकार करने गया तो जंगल में एक मुनिराज ध्यानमग्न दिखाई दिए। मुनिराज को देख कर श्री कान्त राजा ने उनकी अवज्ञा करते हुए कहा—अरे कोढ़िए ! तू यहां कहां से आ गया ?

श्रीपाल मुनि को कोढ़ी कह कर खुशी मनाने के कारण तुम्हें कोढ़ी होना पड़ा और तुम्हारे साथी सात सौ मनुष्यों ने जो सहयोग दिया, उसके कारण उन्हें भी कोढ़ी बनना पड़ा। काला-न्तर में फिर एक बार तू शिकार खेलने गया तो एक मुनि नदी के किनारे ध्यान कर रहे थे। उन्हें तुमने धक्का देकर नदी में गिरा दिया। मगर मुनिराज क्षमा-शील ही बने रहे। यह देख कर

तुम्हारे हृदय में दया उपजी और उन्हें नदी में से बाहर निकलवा लिया। इस कर्म के फलस्वरूप तुम्हें समुद्र में गिरना पड़ा, मगर मुनि को बचा लेने के कारण तुम भी बच गए।

राजा श्रीकान्त ने उक्त घटना जब रानी को बतलाई तो अत्यन्त दुखी होकर उसने कहा—महाराज! ऋषि की घात करने वाले को अनन्त काल तक संसार में भटक कर दुःख भोगने पड़ते हैं। जरा विचार कीजिए। इस जीवन की अनेक घड़ियां पाप कर्म में निकल चुकी हैं। जो जीवन शेष है उसे तो सुधारिए क्यों अपने भविष्य को दुःखमय बना रहे हैं?

इस बार रानी के शब्दों का प्रभाव पड़ा। श्रीकान्त ने आखेट करना बन्द कर दिया और मुनियों को सताना छोड़ दिया।

कुछ समय बाद एक दिन झरोखे में बैठे हुए तुमने मुनिराज को जाते देखा। फिर तुम्हारा क्रोध भड़क उठा। मुनिराज के वध का हुक्म दे दिया। परन्तु जब यह बात रानी को विदित हुई तो वह मुनिराज के सामने गई और बड़ी विनय की। वह उन्हें महल में लाई। राजा से कहा—क्या आप अपनी सात पीढ़ियों को खत्म करना चाहते हैं मुनि की घात करके? इस प्रकार कहने पर राजा को पश्चात्ताप हुआ और वह मुनिराज के चरणों में गिर कर क्षमायाचना करने लगा। रानी ने कहा—गुरुदेव! आप

क्षमा के सागर हैं। मेरे पति ने अज्ञानवश जो अपराध किया है, इसके लिए क्षमा प्रदान कीजिए।

धन्य है वे मुनिराज जो आम के वृक्ष के समान सताने वाले को भी मधुर फल ही देते हैं। मुनिराज ने राजा को क्षमा प्रदान की।

तत्पश्चात् राजा-रानी ने उनसे पूछा—मुनिराज! हमने बहुत-से पाप किए हैं। इन पापों से किस प्रकार छुटकारा मिल सकता है?

मुनि बोले-यदि तुम पाप-फल से बचना चाहते हो तो आसौज सुदि सप्तमी से पूर्णिमा तक, नौ दिन, नवपदजी की आराधना करो, तप करो जाप करो।

राजा-रानी ने गुरु आज्ञा के अनुसार तपश्चर्या की। राजा की अन्य आठ रानियों ने तथा सुभट्टों ने उस तप की सराहना की।

आखिर मुनिराज ने कहा—राजन्! इस पूर्व वृत्तान्त से तुम्हारे चित्त का समाधान हो जाएगा। मुनि को कोढ़ी कहने से तुम कोढ़ी हुए, निंदा करने से भांड बनने का प्रसंग आया और शूली पर चढ़ने का आदेश मिला, मुनि को नदी में गिराने से समुद्र में गिरना पड़ा, मगर निकलवा देने से तुम पार लग गए, और नवपद की आराधना करने से सब प्रकार की यह ऋद्धि प्राप्त हुई।

तुम्हारी पूर्वजन्म की आठ रानियां भी तुम्हें इस जन्म में मिली हैं। उनमें से एक रानी ने पूर्वजन्म में अपनी सौत से कहा था—तुझे सांप काट जाय। इस कर्म के फलस्वरूप उसे सांप ने काटा था। बाद में चारित्र अंगीकार कर लेने के कारण उसे रानी का पद मिला। यह तुम्हारे पूर्वजन्म का वृत्तान्त है।

श्रीपाल अपना पूर्ववृत्तान्त सुन कर सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा—गुरुदेव! अभी मेरी ऐसी शक्ति नहीं है कि मुनिवृत्ति अंगीकार कर सकूँ, तथापि श्रावकधर्म अंगीकार करना चाहता हूँ।

मुनिराज बोले—राजन्! अभी तुम्हें चारित्र प्राप्त होने वाला भी नहीं है। अतएव नवपद का ध्यान करना। उसके प्रभाव से तुम नौवें देवलोक में उत्पन्न होगे और नौ भव करके सिद्धि प्राप्त करोगे।

अपना भविष्य सुन कर श्रीपालजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह वन्दन-नमस्कार करके महल में आ गए। मुनिराज ने भी विहार कर दिया। श्रीपालजी मैनासुन्दरी के साथ नवपद की आराधना करते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

नवपद की आराधना से श्रीपालजी नौ हजार हाथियों, नौ हजार घोड़ों और नौ करोड़ सैनिकों के अधिपति बने। वे नौ वर्षों तक निष्कंटक राज्य करते रहे। फिर वृद्धावस्था आने पर अपने पुत्र को राज्य सौंप कर नवपद की आराधना में लीन हो

गए। इस प्रकार श्रीपालजी का शेष जीवन धर्माराधना में ही व्यतीत हुआ। यथासमय देह त्यागकर वे नौवें देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां से चय कर वे तीर्थङ्करगोत्र का बन्ध करेंगे।

भाइयो! तीर्थङ्कर स्वर्ग से चय कर आते हैं और कोई-कोई तीन नरकभूमियों से निकल कर भी होते हैं। तीर्थङ्कर तीन ज्ञानों के साथ ही जन्म लेते हैं। दीक्षा ग्रहण करने से पहले वर्षी दान देते हैं। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें चौथा मनःपर्ययज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। तपस्या करके वे केवलज्ञान और केवलदर्शन से विभूषित हो जाते हैं। उस समय उन्हें चौंतीस अतिशयों, पैंतीस वाणी की विशेषताओं और आठ महाप्रातिहार्यों की प्राप्ति हो जाती है। ऐसे अरिहन्त भगवन्तों को हमारा वार-वार नमस्कार हो।

अरिहन्त भगवान् चार अघातिक कर्मों का क्षय करके सिद्ध पद प्राप्त करते हैं और सिद्धशिला पर आसीन होकर अनन्त आनन्द का सदा काल उपभोग करते हैं। उन सिद्ध भगवान् को भी हमारा नमस्कार हो।

फिर छत्तीस गुणों से युक्त आचार्य महाराज को तथा पच्चीस गुणों से सम्पन्न उपाध्याय महाराज को भी नमस्कार हो। सत्ताईस गुणों से विभूषित मुनियों को भी हमारा नमस्कार हो।

सम्यग्दर्शन मुक्ति का प्रथम सोपान है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने पर ही सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है और सम्यग्ज्ञान होने

के पश्चात् ही सम्यक्चारित्र अंगीकार किया जा सकता है। चारित्र के साथ तप करने से निर्वाण प्राप्त किया जाता है।

सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्ची श्रद्धा के बिना कितना भी ज्ञान क्यों न हो और कितनी भी उग्र क्रिया क्यों न हो, सब मिथ्या हैं—संसारपरिभ्रमण का कारण हैं सम्यग्दर्शन ही ज्ञान और चारित्र को प्रशस्त एवं मोक्षोपयोगी बनाता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना काम नहीं चल सकता और ज्ञान भी अत्यन्त उपकारक है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान प्राप्त होने पर अज्ञान भाग जाता है। ज्ञान के द्वारा ही जीव को हिताहित का, कृत्य-अकृत्य का और भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक प्राप्त होता है। तो ऐसे ज्ञान-चारित्र के धारकों को मेरा नमस्कार है।

भाइयो! यह चारित्र रंक को राजा, अज्ञानी को ज्ञानी और निर्धन को धनवान् बनाने वाला है। चारित्र के प्रभाव से ही आत्मा परमात्मा बनता है। चारित्र का यह अनूठा माहात्म्य है कि बारह महीने तक जो इसका पालन करता है, वह भी पांच अनुत्तर-विमानों का अधिकारी बन जाता है। ऐसे चारित्र को जो मन वचन काय से पालता है और क्षमा धारण करता है, उसके निकाचित कर्म कट जाते हैं। ऐसे चारित्राराधकों को मेरा नमस्कार हो।

गए। इस प्रकार श्रीपालजी का शेष जीवन धर्माराधना में ही व्यतीत हुआ। यथासमय देह त्यागकर वे नौवें देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां से चय कर वे तीर्थङ्करगोत्र का बन्ध करेंगे।

भाइयो ! तीर्थङ्कर स्वर्ग से चय कर आते हैं और कोई-कोई तीन नरकभूमियों से निकल कर भी होते हैं। तीर्थङ्कर तीन ज्ञानों के साथ ही जन्म लेते हैं। दीक्षा ग्रहण करने से पहले वर्षी दान देते हैं। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें चौथा मनःपर्यवज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। तपस्या करके वे केवलज्ञान और केवलदर्शन से विभूषित हो जाते हैं। उस समय उन्हें चौतीस अतिशयों, पैंतीस वाणी की विशेषताओं और आठ महाप्रातिहार्यों की प्राप्ति हो जाती है। ऐसे अरिहन्त भगवन्तों को हमारा वार-वार नमस्कार हो।

अरिहन्त भगवान् चार अघातिक कर्मों का क्षय करके सिद्ध पद प्राप्त करते हैं और सिद्धशिला पर आसीन होकर अनन्त आनन्द का सदा काल उपभोग करते हैं। उन सिद्ध भगवान् को भी हमारा नमस्कार हो।

फिर छत्तीस गुणों से युक्त आचार्य महाराज को तथा पच्चीस गुणों से सम्पन्न उपाध्याय महाराज को भी नमस्कार हो। सत्ताईस गुणों से विभूषित मुनियों को भी हमारा नमस्कार हो।

सम्यग्दर्शन मुक्ति का प्रथम सोपान है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने पर ही सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है और सम्यग्ज्ञान होने

के पश्चात् ही सम्यक्चारित्र अंगीकार किया जा सकता है। चारित्र के साथ तप करने से निर्वाण प्राप्त किया जाता है।

सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्ची श्रद्धा के बिना कितना भी ज्ञान क्यों न हो और कितनी भी उग्र क्रिया क्यों न हो, सब मिथ्या हैं–संसारपरिभ्रमण का कारण हैं सम्यग्दर्शन ही ज्ञान और चारित्र को प्रशस्त एवं मोक्षोपयोगी बनाता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना काम नहीं चल सकता और ज्ञान भी अत्यन्त उपकारक है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान प्राप्त होने पर अज्ञान भाग जाता है। ज्ञान के द्वारा ही जीव को हिताहित का, कृत्य-अकृत्य का और भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक प्राप्त होता है। तो ऐसे ज्ञान-चारित्र के धारकों को मेरा नमस्कार है।

भाइयो! यह चारित्र रंक को राजा, अज्ञानी को ज्ञानी और निर्धन को धनवान् बनाने वाला है। चारित्र के प्रभाव से ही आत्मा परमात्मा बनता हैं। चारित्र का यह अनूठा माहात्म्य है कि बारह महीने तक जो इसका पालन करता है, वह भी पांच अनुत्तर-विमानों का अधिकारी बन जाता है। ऐसे चारित्र को जो मन वचन काय से पालता है और क्षमा धारण करता है, उसके निकाचित कर्म कट जाते हैं। ऐसे चारित्राराधकों को मेरा नमस्कार हो।

तप का माहात्म्य अद्भुत है। तप के प्रभाव से देवता भी चरणों में झुक जाते हैं। तप निर्जरा का प्रधान कारण है। तपस्या की आग में कर्मों का ईंधन भस्म होते देर नहीं लगती।

इन्हीं नौ पदों की आराधना करके श्रीपालजी नौवें कल्प में उत्पन्न हुए। उन्हें उन्नीस सागर की स्थिति प्राप्त हुई।

मैनासुन्दरी आदि रानियां और कमलप्रभा महारानी भी शुभ ध्यान ध्याती हुई यथासमय काल करके नौवें कल्प में उत्पन्न हुईं। वे भी आगे चार देवता के, चार मनुष्य के और अन्तिम मनुष्यभव करके सिद्धि प्राप्त करेंगी।

इस प्रकार श्रेणिक राजा के सामने भगवान् गौतम ने श्रीपालजी का चरित सुनाया।

भाइयो! जो मनुष्य शुद्ध हृदय से नवपदजी की आराधना करता है, वह इस संसार में सुख प्राप्त करके अन्त में मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार श्रीपालचरित समाप्त होता है। इसके व्याख्यान में कहीं न्यूनाधिकता या विपरीतता हुई हो तो मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

उपसंहार—

भाइयो! आपमें से अधिकांश भाई पूज्य श्री हुकमीचंदजी

महाराज के परिचित हैं। उनके नाम पर सम्प्रदाय चल रहा है। वह इस युग के एक महान् तपस्वी सन्त थे। उन्होंने इक्कीस वर्ष पर्यन्त बेले-बेले का तपश्चरण किया था। पारणा के दिन तेरह द्रव्यों में से ही कोई द्रव्य ग्रहण करते थे। देवता भी उनकी सेवा करते थे।

पूज्य हुक्मीचन्दजी म० के पाट पर पूज्य शिवलालजी म० आए। उन्होंने भी तेतीस वर्षों तक एकान्तर तप किया। तत्पश्चात् उनके पट्ट पर पूज्य उदयसागरजी म० विराजमान हुए, जो अत्यन्त यशस्वी हुए हैं। उनकी कीर्त्ति श्रवण कर तत्कालीन वाईसराय भी उनके दर्शन करने आए थे। उदयसागरजी म० के बाद पूज्य (बड़े) चौथमलजी म० आचार्य हुए। उनके बाद पूज्य श्रीलालजी म० और बाद में पूज्य मन्नालालजी म० पाट पर आए। पूज्य मन्नालालजी म० के सम्प्रदाय में मेरे (जैनदिवाकरजी के) गुरु श्री हीरालालजी म० हुए हैं। उन्होंने सारे परिवार के साथ दीक्षा ग्रहण की थी। इस प्रकार जैनदिवाकर श्री चौथमलजी म० अपने पूर्वजों का स्मरण करते हुए कहते हैं कि वि० सं० १६८१ की विजयादशमी के दिन इस चरित की रचना सम्पूर्ण की।

जैनधर्म के प्रताप से अनन्त काल में अनन्त जीव तिरे हैं, तिर रहे हैं और तिरेंगे। जो भी जैनधर्म को धारण करता है, वह भव-सागर से पार हो जाता है और शिवगति प्राप्त कर लेता है।

भाइयो ! जैसे श्रीपालजी ने धर्म का अनुसरण किया तो उन्हें सब कुछ प्राप्त हो गया। जैसे उन्होंने आयंबिल तप करके कर्मों को काटा वैसे ही अपने को भी तप करके कर्म काटना चाहिए।

नवपद ओली तप आसोज सुदी सप्तमी से आरम्भ होकर पूर्णिमा तक नौ दिनों में समाप्त होता है। इन नौ दिनों में श्रीपालजी की कथा सुनाई जाती है। श्रीपालजी की कथा नवपद-माहात्म्य की कथा है इस कथा के द्वारा इस तप की महत्ता साधारण से साधारण मनुष्य भी सरलता से समझ सकता है।

बैंगलोर के भी बहुत-से भाइयों ने इस तपस्या में भाग लिया है और कथा सुनी है। मेरी आप लोगों से यही प्रेरणा है कि प्रतिवर्ष इसी प्रकार शुद्ध भाव से इस तप की आराधना करते रहना। ऐसा करने से आपके संकट दूर हो जाएँगे और सब प्रकार का आनन्द होगा।

जो भव्य प्राणी नवपदजी का ध्यान सोते-जागते चलते-फिरते और उठते-बैठते करते रहेंगे और जप-तप करेंगे वे इस लोक और परलोक में सुखी होंगे।

केन्टोनमेन्ट बैंगलोर
१६-१०-५१

मानवभव की दुर्लभता

भाइयो !

प्रत्येक मनुष्य जिस स्थिति में है, उस स्थिति से ऊँचा उठने की अभिलाषा रखता है। कोई किसी एक क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहता है और कोई दूसरे क्षेत्र में। अपने-अपने संस्कारो के अनुसार मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर करता है। कोई अधिक से अधिक धनाढ्य बनने की अभिलाषा रखता है, कोई बड़े से बड़ा विद्वान् बनने के लिए पुरुषार्थ करता दिखाई देता है। किन्तु विचारपूर्वक देखा जाय तो इस मानवजीवन की वास्तविक सफलता आत्मा के गुणों के विकास में ही है। आत्मिक गुणों की वृद्धि करना ही सच्चा आत्मोद्धार है। पर-पदार्थों की वृद्धि करने से आत्मा का कल्याण नहीं होता। किसी ने धन की वृद्धि कर ली और वह करोड़पति या अरबपति बन गया, तब भी उसकी आत्मा का क्या कल्याण हो गया ? उस धन को वह अन्तिम समय में यहीं छोड़ कर जाएगा, हां धन के निमित्त किए गए पापकृत्यों के फलस्वरूप उसको दुर्गति ही मिलेगी। यह आत्मा का उद्धार हुआ अथवा अधःपतन हुआ ?

जो बात धन के विषय में है वही अन्य सब पर-पदार्थों के विषय में समझना चाहिए। अभिप्राय यह है कि आत्मा के गुणों की वृद्धि करना ही सच्चा आत्मोद्धार है और यही लक्ष्य प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति का होना चाहिए।

आत्मिक गुणों के विकास का एक मात्र उपाय धर्म की आराधना करना है। धर्म की आराधना किए विना आत्मा का उद्धार होने वाला नहीं है। इसी बात को एक कवि ने कहा है—

> काया हंसविना नदी जलविना दाता विना याचकाः,
> भ्राता स्नेहविना कुलं सुतविना राजा च सैन्यं विना।
> भार्या भक्ति विना पुरं नृप विना धेनुश्च दुग्धं विना,
> दीपस्तैल बिना शशी निशिविना, धर्मं विना मानवः॥

भाइयो! काया तो है परन्तु उसमें चैतन्य जीवात्मा नहीं है तो ऐसा मुर्दा शरीर किस काम का? चिता में जला देने के अतिरिक्त उसका कोई उपयोग नहीं। नदी लम्बी-चौड़ी हो किन्तु जल उसमें न हो तो उससे भी क्या लाभ है? दाता हो किन्तु कोई लेने वाला न हो तो दाता क्या करेगा? भाई हों किन्तु उनमें आपस में स्नेह न हो तो भाई के होने का क्या लाभ है? भाई कई प्रकार के होते हैं, जैसे सहोदर भाई, काका का बेटा भाई, भुआ का लड़का भाई, जातिभाई, समाजभाई, धर्मभाई,

देशभाई आदि। कवि का आशय यह है कि भाई तो कहलाते हैं किन्तु उनमें यदि प्रेम नहीं है तो ऐसे भाई का होना भी किस काम का ? इसी प्रकार विशाल कुटुम्ब तो है और पैसा भी खूब है, परन्तु कुटुम्ब का नाम करने वाला और पैसे का उपभोग करने वाला पुत्र नहीं है तो वह कुटुम्ब और धन भी शोभा नहीं देता। सेना के बिना राजा की शोभा नहीं, पतिभक्ति के बिना पत्नी की शोभा नहीं। लम्बा चौड़ा नगर हो किन्तु उसका शासन करने वाला कोई राजा न हो तो वह नगर भी शोभा नहीं देता। और गाय तो है मगर घास और बांटा देने पर भी यदि वह दूध नहीं देती तो उससे क्या लाभ है ? बिना दूध गाय की शोभा नहीं और तेल के बिना दीपक की शोभा नहीं। रात्रि में धवल प्रकाश करने वाला चन्द्रमा न हो तो रात्रि शोभायमान नहीं होती। इसी प्रकार मानव तो है परन्तु उसके जीवन में यदि धर्म नहीं है तो धर्म के बिना उसकी कोई शोभा नहीं। धर्म से ही मनुष्य की शोभा है। धर्म से ही आत्मा का उद्धार और कल्याण हो सकता है।

धर्म की परिभाषा बहुत व्यापक है। शास्त्रकार कहते हैं—'वत्थुसहावो धम्मो।' अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। इस परिभाषा के अनुसार प्रत्येक वस्तु का अपना-अपना स्वभाव धर्म है और वह सदैव वस्तु के साथ रहता है, क्योंकि स्वभाव के बिना किसी वस्तु की सत्ता की कल्पना नहीं की जा सकती।

आत्माएँ अनन्त हैं परन्तु उन सब में चैतन्य गुण विद्यमान है। वही उसका धर्म है। यह धर्म आत्मा से कभी पृथक् नहीं होता। चेतन में कभी जड़ता नहीं आती और जड़ कभी चेतन नहीं होता। दोनों अपने-अपने स्वभाव में स्थित हैं। तथापि यह नहीं भूलना चाहिए कि चेतन के स्वभाव में जड़ के संसर्ग से विकार आया हुआ है। कर्मों के सम्पर्क से आत्मा के गुण दबे हुए हैं, मलीन बने हुए हैं और विकृत हो रहे हैं। उन गुणों को विशुद्ध रूप में लाने के लिए ज्ञानियों ने नाना प्रकार के विधिविधान, नियम, यम; व्रत आदि बतलाए हैं। उनका आचरण करना भी धर्म है, क्योंकि उनसे आत्मा को शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि होती है।

जिस मनुष्य के जीवन में धर्म रूपी प्राण विद्यमान हैं, वास्तव में वही जीवित है। धर्महीन मानव मुर्दे के समान शोभाहीन है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य; अपरिग्रह आदि शाश्वत धर्म हैं। इसी प्रकार देव, गुरु और धर्म के सच्चे स्वरूप को समझ कर स्वीकार करना धर्म है। कुदेव, कुगुरु और कुधर्म को धर्म मान लेना अधर्म है—मिथ्यात्व है। अठारह पापस्थान अधर्म हैं। दान, शील, तप और भावना धर्म हैं। क्षमा, मार्दव आदि धर्म हैं। क्रोध, मान आदि अधर्म हैं।

शास्त्रों में अनेक प्रकार से धर्म का स्वरूप समझाने का प्रयत्न किया गया है। स्थानांगसूत्र में ग्रामधर्म, नगर धर्म राष्ट्र-

धर्म आदि दस प्रकार के धर्म बतलाए गए हैं। परन्तु संक्षेप में कहा जा सकता है कि जो आत्मा को उन्नत अवस्था में ले जाता है, आत्मा को उसके शुद्ध स्वरूप में स्थिर कर देता है, वही धर्म है।

संसार में नाना गतियां और योनियां हैं। यह जीव कर्मों के अधीन होकर उनमें भटक रहा है और जन्म-मरण के दुःख उठा रहा है। ऐसी स्थिति में उसे धर्म की प्राप्ति होना बड़ा कठिन है। श्रीमद् उत्तराध्ययनसूत्र में बतलाया गया है कि इस जीव को चार अंगों की प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है—

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥

भगवान् तीर्थङ्कर फर्माते हैं कि संसार में चार अंग परम अर्थात् उत्कृष्ट हैं–आत्मा को वास्तविक आनन्द देने वाले हैं। इनमें सबसे पहले मानवता-मनुष्यता की गणना की गई है।

भाइयो! मनुष्य हो जाना इतनी बड़ी बात नहीं है, जितनी बड़ी बात मनुष्यता की प्राप्ति होना। मानव-पर्याय की अपेक्षा मानवता महामूल्यवान् है।

तो हम इस संसार में रह रहे हैं। आज की जनगणना के हिसाब से संसार में दो अरब साठ करोड़ जनसंख्या है। वर्त्तमान में मनुष्यों की संख्या बढ़ती जा रही है। मरते जाने पर भी

लगातार मनुष्य संख्या में इतनी वृद्धि हो रही है कि दुनियां के लोग सोच-विचार में पड़े हुए हैं। औरों की बात छोड़ दें और भारतवर्ष पर ही विचार करें तो प्रतीत होता है कि राष्ट्र के कर्णधार अनाप-सनाप बढ़ती हुई मनुष्य संख्या को देखकर परेशान हो गए हैं। इस वृद्धि के कारण उनकी योजनाएँ कारगर नहीं हो पाती। इस संख्या को निमंत्रित करने के लिए सरकार संतति-नियमन केन्द्र खोल रही है और जोरों से कृत्रिम उपायों द्वारा सन्तति निरोध का प्रयत्न कर रही है।

भगवान् महावीर ने तो पहले ही इसका महत्त्व-शाली उपाय बतला दिया है—संयम। स्त्री और पुरुष दोनों संयम को अपनाएँ और अपनी वासना पर काबू पाने का प्रयत्न करें। ब्रह्मचर्य से रहें। ऐसा करने से धर्म का लाभ भी हो सकता है और सन्तान भी अधिक नहीं होगी। मगर इस उपदेश का पालन करने वाले लोग थोड़े हैं। अधिकांश लोग अपनी वासना को जीतना नहीं चाहते और सन्ततिवृद्धि से भी बचना चाहते हैं। तब कृत्रिम उपायों का अवलम्बन लें यह सहज है। मगर यह मार्ग प्रशस्त नहीं है। सुखद नहीं है। यह कदम गलत है।

तो मनुष्यों की संख्या भले ही बढ़ रही है, फिर भी उनमें मानवता को धारण करने वाले बहुत कम हैं। जिसमें भद्रता, विनयशीलता, दयालुता और अमत्सरता आदि सात्त्विक गुण आ जाते हैं, उसी में मानवता आ गई है, यह कहा जा सकता है।

उपर्युक्त चार गुण जिसमें होते हैं, वह मनुष्य मर कर पुनः मनुष्यगति प्राप्त करता है। इन गुणों में ही मानवता रही हुई है। मनुष्य में इन गुणों की जितनी मात्रा में कमी है, समझना चाहिए कि उसमें उतनी ही मात्रा में मनुष्यता की कमी है। यह मनुष्यता विरले ही मनुष्यों में पाई जाती है।

दूसरा अंग है-शास्त्र को श्रवण करना। जैसे माली उद्यान में चुन-चुन कर फूलों के पौधे लगाता है। उनमें फूल आते हैं तो उन्हें चुन-चुन कर तोड़ता है और एक टोकरी में इकट्ठे करता है। फिर एक स्थान पर बैठ कर एक-एक फूल को लेकर सुई में पिरोता है। जहां जैसी आवश्यकता हो, वहां वैसा ही चमेली, गुलाब, मोगरा वगैरह का फूल लगाता है। एक सूत्र में इस प्रकार अनेक फूल पिरो कर वह सुन्दर माला तैयार कर लेता है। वह माला जिसके गले में पहनाई जाती है, उसका गला सुशोभित हो जाता है। इसी प्रकार भगवान् तीर्थङ्कर के वचन सुन्दर सुगंधित पुष्पों के समान हैं। मालाकार के समान गणधर देव उनका चयन करते हैं और सूत्र में गूंथ कर उन्हें माला का रूप प्रदान करते हैं। वही वचन सूत्र या आगम कहलाते हैं। जो भाग्यवान् सूत्र रूपी इस माला को कंठस्थ कर लेता है-हृदय में धारण करता है, उसका सम्पूर्ण जीवन सुन्दर बन जाता है।

यों तो सभी मनुष्य अपनी-अपनी भाषा में अपने विचार

प्रकट करते हैं, परन्तु तीर्थङ्करों के वचनों में कुछ विशेषता होती है। महान् आत्मा के वचन जब निकलते हैं तो श्रोताओं के हृदय पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता है और उनका जीवन बदल जाता है। केवलज्ञान प्रकट हो जाने पर ही तीर्थङ्कर उपदेश देते हैं। पहले वे मौन रह कर ही साधना करते हैं। जब भगवान् के मुखारविन्द से दिव्यध्वनी प्रकट होती है तो गणधर उसे श्रवण करके सूत्र रूप में गूंथ लेते हैं। वे सूत्रवचन उन्हीं को श्रवण करने को मिलते हैं, जिनके तीव्र पुण्य का उदय होता है और जिनमें मानवता होती है।

भगवान् के एक-एक वचन में गम्भीर रहस्य भरा रहता है। ये वचन मन्त्र के समान कल्याणकारी हैं। किसी स्त्री या पुरुष को सर्प काट लेता है तो उसके जहर को निवारण करने के लिए किसी गारुड़ी अथवा मन्त्रवादी को बुलाया जाता है। वह मन्त्र पढ़ता जाता है और झाड़ा देता जाता है। ऐसा करने से जहर उतर जाता है और वह व्यक्ति उठ कर बैठ जाता है। यद्यपि मन्त्र किसी की समझ में नहीं आया, फिर भी उसके अक्षरों में इतनी शक्ति रहती है कि समझे बिना भी रोगी पर तत्काल असर होता है और जहर उतर जाता है।

इसी प्रकार संसार के प्राणी विषय-कषाय रूपी विष से बेभान हो रहे हैं। उनके इस विष को दूर करने के लिए तीर्थङ्करों

के वचन गारुड़ी मन्त्र के समान हैं। वह समझ में आएँ चाहे न आएँ, फिर भी उनका श्रवण कल्याणकारी होता है। उनके सुनने से श्रोता की आत्मा निर्मल हो जाती है। परन्तु यह वाणी सुनने का सुयोग सब को नहीं मिलता। कोई विरले भाग्यवान् मनुष्य ही इसे सुन पाते हैं।

तीसरा अङ्ग श्रद्धा है। श्रद्धा भी परम दुर्लभ है। जिसका पुण्य अत्यन्त तीव्र होता है, उसके ही अन्तःकरण में जिनवचनों के प्रति श्रद्धा होती और टिकती है। आज का युग बड़ा दूषित बन गया है। लोगों में श्रद्धा की कमी होती जा रही है। कहते हैं–यह तर्क का युग है, परन्तु सर्वत्र तर्क का प्रवेश नहीं है। कुछ ऐसे सूक्ष्म तत्त्व हैं जो जनसाधारण के तर्क के गोचर नहीं होते। आप्त पुरुषों के वचनों पर श्रद्धा रख कर ही उन्हें स्वीकार करना चाहिए और अपना जीवन पवित्र बनाना चाहिए।

चौथा अङ्ग है—भगवान् के वचनों पर श्रद्धा करके उनके अनुसार आचरण करना—पराक्रम फोड़ना। यह भी बड़ा दुर्लभ है। किन्तु भगवान् द्वारा प्रदर्शित पथ का यदि अनुसरण नहीं किया जाएगा तो आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता। 'रोटी-रोटी' की रट लगाने मात्र से क्षुधा की शान्ति नहीं हो सकती। पेट में रोटी डालने से ही भूख मिटेगी। इसी प्रकार आपने धर्म के स्वरूप को समझ लिया और उस पर विश्वास भी कर लिया किन्तु आचरण नहीं किया तो कैसे आपकी आत्मा का कल्याण

होगा ? चिरकाल से आत्मा को जो भूख लगी हुई है मोक्ष-मंदिर में पहुँचने की, वह बिना आचरण किये नहीं मिट सकती, अतएव संयम का पालन करना भी धर्म है।

आत्मा पुरुषार्थ तो अनादि काल से कर रहा है, मगर उसके पुरुषार्थ की दिशा गलत है। आत्मा अपने निज के वैभव को भूल कर बहिर्मुख बन रहा है। वह भौतिक-जड़ पदार्थों की ओर देखता है, उन्हीं को उपादेय मानता है और उन्हीं के लिए प्रयत्नशील रहता है। जड़ पदार्थों की ओर देखते रहने से उसे अपने आपको समझाने का अवकाश नहीं मिल रहा है। इस प्रकार सारवान् आत्मिक सम्पत्ति की उपेक्षा करके वह जगत् के निस्सार पदार्थों के लिए प्रयत्न कर रहा है। मुझे धन चाहिए भवन चाहिए, स्त्री-पुत्र चाहिए, यह चाहिए, वह चाहिए-ऐसा समझ कर पुरुषार्थ किया और अनन्त वार उन्हें पा भी लिया, किन्तु पा करके भी सार क्या निकाला ? क्योंकि जो कुछ प्राप्त किया, उस सब को यहीं छोड़ कर अन्त में कोरा चला गया और कहीं अन्यत्र उत्पन्न हो गया। सब कुछ यहां का यहीं रह गया ! तो ऐसे पदार्थों के लिए जीवन गँवा देने से क्या लाभ है ? जो पर-पदार्थ हैं, उन सब का यही हाल है। उनमें से कोई भी सदा साथ देने वाले नहीं हैं। अतः उनके लिए जो पुरुषार्थ तुम कर रहे हो, वह गलत है। अपने पुरुषार्थ की दिशा बदलो और अपने असली आन्तरिक वैभव की ओर देखो। वह वैभव अपरि-

मित है; अनन्त है और आत्मा को छोड़ कर जाने वाला नहीं है। एक बार उसे जो प्राप्त कर लेता है, उसे फिर कुछ भी प्राप्त करने की आकांक्षा नहीं रहती। एक कवि कहता है—

चार कोस गामान्तरे, खर्ची बांधे लार।
परभव निश्चय जावणो, तेनो नहीं विचार॥

जब मनुष्य चार कोस दूर के किसी दूसरे गांव को जाता है तो खाना-खर्ची साथ लेकर जाता है। उस समय उसे आगे का खयाल रहता है। परन्तु बड़ा अफसोस है कि आयु पूर्ण होने पर जाने का निश्चय होने पर भी इसे आगे का खयाल नहीं है। जब आयुष्य का अन्त आ जाएगा और इस शरीर को यहीं छोड़ कर तेरी आत्मा परलोक में जाएगी—जिसकी दूरी का पता नहीं है, तब तू किसके भरोसे जाएगा? वहां पहुँच कर किस प्रकार सुख से रहेगा? अरे जीव! थोड़ा विचार कर। छोटे-से इस जीवन की जितनी चिन्ता करता है, उतनी भी चिन्ता अनन्त भविष्य की नहीं है। अगर अभी से आगे की तैयारी शुरु कर देगा और भाता बांध लेगा तो भविष्य में तेरी आत्मा को सुख मिलेगा। तू वहां अमन-चैन से रह सकेगा। अगर साथ में 'भाता' नहीं होगा तो कष्ट भोगना अनिवार्य है।

तो इस प्रकार के कष्ट से बचने के लिए मनुष्य को अभी से पुरुषार्थ करना चाहिए। किन्तु संसार की बहुत-सी आत्माएँ

विषय-कषाय में ऐसी फँसी हैं कि उन्हें ज्ञानियों के वचन विष के समान लगते हैं।

ज्ञानी कहते हैं—भाई, अब भी समय है। चेत जाओ और सत्य के लिए पुरुषार्थ करो। तो सुनने वाले कहते हैं-हां साहब अब करेंगे।

यों करते-करते जीवन का अन्त आ जाता है और मनुष्य को खाली हाथ जाना पड़ता है। उस समय पश्चात्ताप होता है, किन्तु उससे क्या बनता है ? जो समय बीत गया वह वापिस आने वाला नहीं।

एक सेठ था। वह रात्रि में विश्राम कर रहा था। अचानक चोर चोरी करने के लिए आए उन्होंने सेंध लगाना शुरु किया। दीवार टूटने की आहट से सेठानी की नींद खुल गई। उसने सेठ को जगाकर कहा—चोर आए दीखते हैं। दीवार तोड़ रहे हैं। सेठ ने झुंझला कर कहा-हल्ला मत करो। मुझे पता है।

चोर अन्दर घुस गए। सेठानी से नहीं रहा गया। उसने कहा-चोर तो अन्दर भी आ गए। फिर भी सेठ ने कहा—हां, मुझे पता है।

चोरों ने तिजोरी की चाबियां हथिया लीं। यह देख सेठानी फिर कहने लगी—अजी, अब तो उठो। उन्होंने तिजोरी

खोल ली है। तब भी सेठ लेटा-लेटा ही बोला—अरी भाग्यवान्, मुझे पता है।

चोरों ने तिजोरी से माल निकाल कर ले जाने लगे तब भी सेठानी ने चेताया—'अरे, अब तो उठो। चोर सारा माल ले जा रहे हैं।' मगर चोरों को देखते हुए भी सेठ कहने लगा—अरी, मुझे सब पता है। तब सेठानी झुंझला कर बोली—तुम्हारे इस पता पड़ने में धूल पड़े। तुमसे कुछ भी करते नहीं बना और चोर चम्पत हो गए। कहा है—

घर को धन सब मूस कर, चोर गया बहु दूर।
जाणूं जाणूं कर रह्यो, जाणपणे में धूर॥

यह तो एक दृष्टान्त है। ऐसी घटना घटित हुई हो या नहीं, मगर इसका आशय यही है कि अगर समय रहते कुछ न किया गया तो मनुष्य की समझदारी वृथा है। बाद में सेठ पछताए तो उससे कोई लाभ होने वाला नहीं है। इसी प्रकार जो मनुष्य समय रहते परलोक सुधार के लिए कुछ नहीं करेंगे, उन्हें पीछे पछताना पड़ेगा। अतएव जान कर आचरण करना चाहिए और अपनी जानकारी को सार्थक बनाना चाहिए। इसी में बुद्धिमत्ता है। यही ज्ञान का सार है।

तो ज्ञानी पुरुष कहते हैं—यह मानवजीवन बार-बार बहुत मुश्किल है। महान् पुण्योदय से यह जीवन तुम्हें प्राप्त हो

गया है। इस जीवन को प्राप्त करके यदि सत्-आचरण नहीं किया तो पुनः चौरासी के चक्र में भ्रमण करना पड़ेगा।

श्रीमद् उत्तराध्ययनसूत्र की कथाओं में मानवजीवन की दुर्लभता समझाने के लिए दस दृष्टान्त दिये गये हैं। स्व० पूज्य खूबचन्दजी म० ने हिन्दी-कविता में उनकी रचना की है। उसके आधार पर उन दृष्टान्तों को आपके समक्ष रखता हूं।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पंचाल देश था। उसकी राजधानी कंपिलपुर थी। वहां के राजा ब्रह्म थे, चूलिनी नामक महारानी थी। एक वार महारानी को चौदह स्वप्न दिखाई दिए, क्योंकि उसके गर्भ में बारहवें चक्रवर्त्ती अवतरित हुए थे। स्वप्न देख कर महारानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। सवा नौ मास पूर्ण होने पर पुत्र का जन्म हुआ। राजा और प्रजा ने जन्ममहोत्सव मनाया। बारहवें दिन पुत्र का नाम, अपने नाम के ऊपर ही, 'ब्रह्मदत्त' रख दिया।

भाइयो! आपको विदित ही है कि जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। इस नियम के अनुसार कुमार के कुछ बड़े होने पर ब्रह्म नरेश्वर की मृत्यु हो गई। उसका राज्य बहुत विशाल था। राजा के न रहने पर राज्य को हथियाने के लिए कई तरह के दावपेंच खेलने जाने लगे। भयंकर संघर्ष की संभावना उत्पन्न हो गई। मगर उसका दीवान बड़ा ही बुद्धिमान्

और कुशल था। उसने छोटी-सी उम्र होने पर भी राजकुमार ब्रह्मदत्त को राजसिंहासन पर आसीन कर दिया। लम्बे-चौड़े राज्य की सुव्यवस्था करने के लिए चार विश्वस्त व्यक्तियों को नियुक्त कर दिया। आखिर विस्तृत राज्य की देखरेख करना कोई साधारण काम नहीं और ठीक तरह देखरेख हुए विना राज्य में अमन-चैन नहीं रह सकता। तो वे चारों व्यक्ति योग्यता के साथ राजकाज का संचालन करने लगे। उन चारों में जो प्रधान व्यवस्थापक था, उसका नाम दृग नरेश था।

संयोग की वात है कि ब्रह्मदत्त की माता महारानी चूलिनी का प्रधान राज्य व्यवस्थापक राजा दृग के साथ सम्पर्क वढ़ गया। दृग राजकीय कार्य से प्रायः राजमहल में आता जाता रहता था, महारानी के साथ वार्त्तालाप और विचार-विमर्श करता रहता था और कई वार दोनों एकान्त में भी वैठा करते थे। एकान्त में काम का वास होता है। अतएव नर-नारी का एकान्त में सम्पर्क होने से चूलिनी के चित्त में विकार भाव उत्पन्न हो गया। आखिर एक दिन चूलिनीने दृग के समक्ष अपना मनोभाव प्रकट कर दिया और दृग भी वासना के वशीभूत हो गया।

भाइयो ! कामवासना वड़ी प्रवल है और वह मनुष्य के विवेकनेत्रों को विनष्ट कर देती है। देखो, छह खण्डों के अधिपति चक्रवर्त्ती की माता को भी विकार ने घेर लिया और वह नीच स्त्रियों की भांति अपने धर्म से डिग गई। किसी कवि ने कहा है—

नींद न देखे साथरो, इश्क न पूछे बात।
भूख न पूछे सालणो, तीनों जात कुजात॥

जो व्यक्ति विकार-वासना से ग्रस्त हो जाता है; वह जात-कुजात को या भलाई-बुराई को समझने में असमर्थ हो जाता है। जिसे गहरी नींद सता रही हो, वह कहीं भी लुढ़क जाता है। उसे बिस्तर की चिन्ता नहीं होती। भूखा आदमी कब परवाह करता है कि यह भोजन गरम है या ठंडा हो गया है या शाक रहित है। जो सामने आया उसी को प्रेम से खा लेता है।

आखिर चूलिनी और दृग राजा में अनैतिक सम्बन्ध कायम हो गया। परन्तु पाप छिपाये नहीं छिपता। वह कभी न कभी प्रकट होकर ही रहता है। ब्रह्मदत्त को भी इस पाप का पता चल गया। वह मन ही मन अत्यन्त दुखी रहने लगा और सोचने लगा–मेरी माता किस मार्ग पर जा रही है। मगर मैं कैसे और क्या कर सकता हूं? मेरी उम्र छोटी है और राजा होने पर भी मेरे हाथ में कोई ताकत नहीं है। राज्य की सारी बागडोर इसी दृग के हाथ में है। ब्रह्मदत्त ने फिर विचार किया—यदि यह राजा बुद्धिमान् होगा तो इशारे से समझ जाएगा। इस प्रकार विचार करके ब्रह्मदत्त ने इशारे में समझाने के लिए अन्तःपुर के प्रवेशद्वार पर एक पींजरे में कौवा और दूसरे में हंसनी को बंद करके लटकवा दिया। जब सदा की भांति दृग नरेश अन्दर प्रवेश

करने लगा तो दोनों पींजरों पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसी समय ऊपर से ब्रह्मदत्त ने काक को संबोधन करते हुए कहा—अरे काले कौवे! यदि तूने हंसनी को बुरी दृष्टि से देखा वो याद रखना, तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएँगे।

यह दृश्य देख कर और ब्रह्मदत्त का वाक्य सुन कर दग समझ गया कि मेरा पाप प्रकट हो गया है। ब्रह्मदत्त मुझे इशारे से समझाने के लिए ही कौवे की आड़ ले रहा है। अन्योक्ति के मिष से यह मुझे चेतावनी दे रहा है।

राजा दग वापिस लौट गया। उसने सोचा—अब रानी के साथ सम्पर्क न रखना ही मेरे लिए उचित है। कल को ब्रह्मदत्त के हाथ में पूरी सत्ता आएगी और उस समय मुझे न जाने किस मौत से मरवाएगा। मुझे महारानी से भी यह बात कह देनी चाहिए।

इस प्रकार संकल्प करके और अवसर देख कर वह महा-रानी के पास पहुँचा। उसने सारी परिस्थिति उसे समझाई और कहा—जो हो चुका वही बस है। अब मैं आपके पास नहीं आ सकूँगा।

मगर चूलिनी महारानी विषयान्ध हो रही थी। उसने ब्रह्मदत्त की चेतानी की परवाह न करते हुए दग से कहा—क्यों

चिन्ता करते हो। मैं सब उपाय कर लूँगी। अगर ब्रह्मदत्त हमारे बीच बाधक बना रहा तो उसे यमलोक भेज दूँगी।

और उनका पापकृत्य ज्यों का त्यों चलता रहा।

महारानी चूलिनी ने लकड़ी का एक आलीशान महल बनवाना प्रारम्भ कर दिया। जब महल बन कर तैयार हो गया तो धूमधाम से ब्रह्मदत्त का विवाह भी कर दिया। नवविवाहित दम्पति माता के पास आए तो उसने ब्रह्मदत्त से कहा—बेटा, तुम्हारे आराम के लिए ही लाखों की लगत से नवीन भवन का निर्माण कराया गया है। अतएव आज की रात तुम दोनों उसमें जाकर रहो। ब्रह्मदत्त को षड्यन्त्र का पता नहीं था। वह माता की आज्ञा शिरोधार्य करके काष्ठ के महल में सपत्नीक चला गया।

मगर राज्य के वयोवृद्ध पुराने मंत्री की पैनी नजर से यह षड्यन्त्र छिपा नहीं था। जैसा ही महारानी ने काष्ठ का महल बनवाया कि मंत्री ने अपने घर से महल तक एक सुरंग गुप्त रूप से तैयार करवाली थी। आज उसकी उपयोगिता स्पष्ट हो गई। मंत्री ने ब्रह्मदत्त से एकान्त में कहा—महाराज ! जिस महल में आप शयन करने के लिए जा रहे हैं, वह आपको मारने के लिए ही बनवाया गया है, मगर उसका प्रतीकार भी मैंने तैयार कर लिया है। मेरे मकान से महल तक एक गुप्त सुरंग है। आप मुझे अपना शत्रु न समझें। मैंने जीवन भर आपका नमक खाया

है। मैं आपका वफादार सेवक हूं। तो आप भले ही उस महल में जाएँ और आराम से रहें, मगर आपको सदैव सावधान रहना होगा। तनिक भी खतरा होने पर उस सुरंग द्वारा आप मेरे घर आ जाइएगा। आप वहां सुरक्षित रूप से रह सकेंगे।

ब्रह्मदत्त मंत्री की बात सुनकर चकित रह गया। उसके खेद और दुःख का पार न रहा। जन्म देने वाली माता इस दर्जे तक क्रूर हो सकती है वह पिशाचिनी भी बन सकती है। धिक्कार है इस विषयवासना को, जिसके कारण माता भी अपने लाड़ले लाल के प्राणों की ग्राहक हो जाती है।

ब्रह्मदत्त सतर्क भाव से उसी महल में रहने लगा। कुछ दिन व्यतीत हो जाने पर एक बार रात्रि में रानी ने महल में आग लगवा दी। लकड़ी का महल सांय सांय कर जलने लगा। ब्रह्मदत्त को पता चला तो मन में कहाभला -हो उस बूढ़े मंत्री का जिसने मेरे प्राणों की रक्षा का उपाय कर लिया और मुझे बचा लिया, अन्यथा; माता ने तो अपना करतब करने में कुछ कमी नहीं रक्खी।

ब्रह्मदत्त सुरंग में होकर मंत्री के मकान में जा पहुँचे। मंत्री से कहा—आपका कथन यथार्थ था। महल आग की लपटों में राख हुआ चाहता है। आप मेरे मंत्री ही नहीं, प्राण-रक्षक भी हैं। मेरा जीवन अब आपका ही दिया हुआ है।

मन्त्री ने विनम्र भाव से कहा—महाराज! मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। आपने यहां आकर बहुत उत्तम काम किया है। मगर आपका अधिक दिनों तक यहां रहना भी निरापद नहीं है। कदाचित् महारानी को इस घटना का पता चल गया तो मैं तो सपरिवार मारा ही जाऊँगा. आपके भी प्राण नहीं बचेंगे। अतएव आपकी सुरक्षा के लिए कोई दूसरा उपाय करना होगा। मगर जब तक वह नहीं हो जाता, आप निश्चिन्त होकर रहें।

मंत्री ने अपने आज्ञाकारी पुत्र को ब्रह्मदत्त की सेवा में नियुक्त कर दिया। कुछ समय पश्चात् अवसर देख कर मंत्री ने ब्रह्मदत्त को रात्रि के समय अपने पुत्र के साथ अन्यत्र रवाना कर दिया। दोनों ने वेष बदल लिया था, फिर भी वे सशंक थे कि कहीं पहचान न लिये जाएँ और प्राणों पर संकट न आ जाए।

चलते-चलते दोनों बहुत दूर जा पहुंचे और किसी नगर में रहने लगे। दोनों एक दूसरे का बहुत ध्यान रखते थे। मगर थोड़े दिनों के बाद मंत्री का पुत्र लौट कर अपने घर आ गया और ब्रह्मदत्त अकेला ही रह गया।

भाइयो! कहावत है—'दो हैं तो सौ हैं और अकेला है तो आधा है।' ब्रह्मदत्त अब अकेला ही रह गया। फिर भी

उसने धैर्य नहीं त्यागा और सोचा—वे दिन न रहे तो ये दिन भी नहीं रहेंगे। कहा है—

हिम्मत कीमत होय; हिम्मत विन कीमत नहीं।
आदर करे न कोय, रद कागज ज्यों राजिया॥

मनुष्य की कीमत होती है हिम्मत रखने से। जिसने विपत्ति आते ही हिम्मत हार दी, उसके जीवन का कोई मूल्य नहीं रह जाता। रद्दी कागज की कोई कीमत नहीं, नोटों की कीमत है।

एक दिन ब्रह्मदत्त भी उसी नगर को छोड़ कर चल दिया, चलते-चलते जंगल में पहुँचा तो धूप बहुत तेज पड़ रही थी। प्यास से गला सूखा जा रहा था। मुँह कुम्हला गया था।

भाइयो! प्यास की पीड़ा बड़ी भयानक होती है। जब प्यास से गला सूख जाता है तो मनुष्य के कंठ से बोल नहीं निकलता और मूर्छा आ जाती है। एक कवित्त में कहा है—

पानी के जन्तु कहा पहचानत,
ग्रीष्म की तपती गरदी को।
केसर को रँग कहा सठ जानत,
जान पड़ी तो पड़ी हरदी को।
कायर को कहा काम सँभारत,
सूरन को शुद्ध है मरदी को।

परम सुखी पर पीड़ क्या जानत,
जानत है दरदी दरदी को ॥

अर्थात्–कच्छ-मच्छ आदि जलचर जीवों को क्या मालूम कि गर्मी का कष्ट कैसा होता है ! जिसने कभी केसर नहीं देखी वह केसर का रंग दिखाने पर कहता है–यह तो हरदी का रंग है ! कायर अवसर आने पर हथियार डाल देता है, मगर शूरवीर अड़ जाता है और कहता है–मर जाएँगे परन्तु पैर पीछे नहीं हटाएँगे।

भाइयो ! भारतीय इतिहास में अगणित वीर ऐसे हुए हैं जिन्होंने रण में प्राण अर्पण कर दिए और अपने यश को चिर-स्थायी बना लिया। मेवाड़ के जयमल और फत्ता दोनों भाई बड़े वीर थे। एक बार युद्ध के प्रसंग पर महाराणा ने पत्र भेज कर उन्हें बुलवाया। दोनों भाई पत्र पढ़ कर महाराणा की सेवा में पहुँचने को चित्तौड़ की ओर रवाना हुए। रास्ते में उन्हें पांच सौ चोर मिल गए, क्यों कि लड़ाई के समय चोरों की भी बन आती है। चोरों ने दोनों भाइयों से कहा—जो कुछ तुम्हारे पास हो, निकाल कर हमारे सामने रख दो।

यह सुन कर दोनों में से एक ने कहा—'यहां इत।' इतने में ही दूसरे ने कहा—'वहां उत' और जब दोनों का इस प्रकार संकेत हुआ तो चोर यह सुन कर बोले—हम को इसका भी अर्थ बतलाओ।

तब पहले ने कहा—मैंने जो 'यहां-इत' कहा, उसका मतलब यह था कि इसके साथ लड़ाई की जाए। मगर हमारे के 'वहां-उत' कहने का अभिप्राय यह है कि इन लोगों के साथ लड़ाई न करें। हम तो दुश्मनों के साथ वहीं जूझेंगे।

चोरों पर वार्त्तालाप का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे भी उनके साथ हो गए। वहां पहुंच कर दोनों भाई विस्मयोत्पादक वीरता के साथ लड़े और अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करके अमर हो गए।

तो इस दृष्टान्त से आपको यह समझना है कि 'यहां-इत' अर्थात् इसी जन्म की चिन्ता में मत डूबे रहो, किन्तु 'वहां-उत' अर्थात् अगले जीवन की भी फिक्र करो। कुछ ऐसा भी करो कि आपका भविष्य मंगलमय बन जाए। 'वहां' के लिए करोगे तो नाम अमर हो जाएगा।

अभिप्राय यह है कि जो शूरवीर होता है वह अवसर आने पर प्राणों की भी बाजी लगा देता है।

और जो सब प्रकार से सुखी होता है, जिसे कोई भी अभाव नहीं होता, वह दुखी के दर्द को नहीं समझ सकता। दुखिया के दिल की कसक का अनुभव उसी को होता है जो स्वयं दुःख उठा चुका हो।

तो मैं कह रहा था कि जगल में ब्रह्मदत्त को जोरो से

प्यास लगी—उसके प्राण सिमट कर गले में जा अटके। उसी समय एक ब्राह्मण उस ओर से आ निकला। संयोग से उसके पास पानी था। ब्रह्मदत्त ने अत्यन्त दीनता के साथ कहा—भाई, मैं प्यास से मरा जा रहा हूं। मुझे थोड़ा पानी पिला दो।

मगर ब्राह्मण बोला-यदि मैं तुम्हें पानी पिला दूँगा तो मैं प्यास से मर जाऊँगा। मेरे पास थोड़ा ही तो पानी है।

ब्रह्मदत्त ने निराश होकर कहा-यदि तुम थोड़ा-सा पानी पिला दोगे तो मैं तुम्हें निहाल कर दूँगा।

ब्राह्मण के मन में लालच उत्पन्न हुआ। उसने पूछा-तुम कौन हो जो निहाल कर देने की बात कहते हो?

ब्रह्मदत्त—यों तो मैं बहुत बड़े घराने का हूँ, मगर आज कर्मोदय के कारण दुखी हो रहा हूँ। जब कंपिलपुर का राज्य मेरे हाथ में आ जाएगा तब जो कुछ तुम मांगोगे, वही पाओगे। पहचान के लिए मैं चिट्ठी लिख देता हूं।

ब्राह्मण ने चाहे दया से चाहे लालच से प्रेरित होकर पानी पिला दिया। ब्रह्मदत्त ने उसे चिट्ठी लिख कर दे दी।

संक्षेप में, ब्रह्मदत्त का पुण्य उदय में आने लगा और वह राजाओं से सम्मान-सत्कार पाता हुआ आखिर कंपिलपुर में पहुँच गया। उसके आगमन का समाचार पाते ही पापी लोग

भाग खड़े हुए। ब्रह्मदत्त स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करने लगा। तत्पश्चात् उसे चक्ररत्न आदि चौदह रत्नों और नव निधियों की प्राप्ति हुई। उनके प्रताप से समग्र भारतवर्ष पर उसका निष्कंटक राज्य हो गया। बत्तीस हजार मुकुटबंध राजा उसकी सेवा में उपस्थित रहने लगे। सोलह हजार देवता उसकी सेवा करने लगे। बयालीस खण्डों वाले महल में निवास करने लगे। दशों दिशाओं में ब्रह्मदत्त की कीर्त्ति फैलने लगी।

जब उस ब्राह्मण को पता चला कि ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती राजा हो गए हैं तो उसने उनकी लिखी चिट्ठी निकाली और मुँहमांगा दान लेने का निश्चय किया। चलता-चलता वह कंपिलपुर आया। राजमहल के द्वार पर पहुंचा तो बड़ी कठिनाई से द्वारपालों ने उसे भीतर प्रवेश करने दिया। तब महाराज ब्रह्मदत्त के समक्ष जाकर उसने कहा—महाराज! आपने मुझे पहचाना?

ब्रह्मदत्त—ध्यान नहीं आ रहा है भाई!

तब ब्राह्मण ने अतीत की घटना सुना कर वह चिट्ठी दिखलाई। ब्रह्मदत्त को चिट्ठी देखते ही जंगल का वह संकट स्मरण आ गया। मन में सोचा—इस ब्राह्मण ने उस समय पानी पिला कर मेरे प्राणों की रक्षा की थी। फिर प्रकट में कहा—भाई, मुझे सब कुछ स्मृति में आ रहा है। तुम्हें जो कुछ मांगना हो, मांग लो।

ब्राह्मण बोला—जय हो महाराज की! परन्तु मेरी ब्राह्मणी

साथ में आई हुई है, अतएव उससे पूछ कर मांग लूँगा।

यह कह कर ब्राह्मण अपनी पत्नी के पास आया। उसने कहा—ले, तेरे भाग्य खुल गए। महाराज ने मुझे पहचान लिया है और मुँहमांगा दान देने की हां भर दी है। अब तू बता क्या मांगूँ ?

ब्राह्मणी अत्यन्त प्रसन्न हुई और सोचने लगी—क्या मांगना उचित होगा ? यदि धन की मांग करवाती हूं तो यह ब्राह्मण धन-राशि पाकर दूसरी स्त्री ले आएगा और मुझे सौत की मुसीबत भुगतनी पड़ेगी। अतएव धन की याचना तो नहीं करनी चाहिए।

सोच-विचार करने के बाद अन्त में ब्राह्मणी ने निश्चय किया कि हमें प्रतिदिन भोजन और दक्षिणा में एक मोहर की मांग करना चाहिए। ऐसा निश्चय करके उसने पति के सामने यह प्रस्ताव रख दिया। ब्राह्मण ने कहा—तेरी यही मर्जी है तो यही सही।

ब्राह्मण फिर ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती के पास पहुँचा और कहने लगा—महाराज ! आप तो दयालु हैं और सब कुछ देने को तैयार हैं, परन्तु मैं केवल यही चाहता हूं कि आपके राज्य में जो ऊँचे कुल वाली बस्ती है, उसके यहां से एक-एक दिन भोजन मिला करे और प्रतिदिन एक-एक मोहर दक्षिणा में मिला करे।

ब्राह्मण की मांग सुन कर चक्रवर्त्ती ने कहा-अरे यह क्या मांगा ! कुछ और मांग ले।

ब्राह्मण—नहीं महाराज ! इसके सिवाय मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

राजा ने कहा—अच्छा, जो मांगा वही मिल जाएगा। उसी दिन राजा ने डोंडी पिटवा दी कि अमुक ब्राह्मण को प्रतिदिन बारी-बारी से जिमाया जाय और दक्षिणा के रूप में एक मोहर दी जाय।

ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को यह समाचार सुनाया और कहा-मैंने तेरे कथनानुसार मांग लिया है। आज महाराज के रसोईघर में अपना भोजन है।

उस दिन दोनों साफ-सुथरे वस्त्र पहन कर महाराज की भोजनशाला में भोजन करने पहुँचे, भोजनशाला के व्यवस्थापकों ने उनका सत्कार किया, ऊँचे आसन पर बिठलाया। फिर सोने के थालों में भोजन परोसा गया। उन्हें वही भोजन परोसा गया जो खासतौर पर चक्रवर्त्ती खाता था। उस दिन खीर बनाई गई थी। जिस दूध की खीर बनी थी, वह साधारण दूध नहीं था। कहते हैं—एक लाख गायों का दूध दुह कर पचास हजार गायों को पिलाया जाता है। उन पचास हजार गायों का दूध पच्चीस हजार को और यों करते-करते अन्त में एक गाय का

दूध चक्रवर्त्ती के काम में आता है। उस दूध से बनी और ऊपर से बादाम, पिश्ता आदि मेवा डाली हुई खीर जब ब्राह्मण-दम्पती ने खाई तो उन्हें ऐसा लगा मानों अमृत-भोजन कर रहे हैं। जीवन में प्रथम वार ही उन्हें इतना स्वादिष्ठ भोजन मिला था। भोजन के अन्त में दक्षिणा में मोहर दी गई। ब्राह्मण-दम्पती भोजन करके अपने घर पहुंचे तो भोजन की प्रशंसा करते-करते न थके।

दूसरे दिन बारी के अनुसार किसी दूसरे घर में उनका भोजन हुआ। मगर आप सोच सकते हैं कि चक्रवर्त्ती के भोजन के समान दूसरी जगह भोजन कैसे मिल सकता था? उन्होंने वहां जो भोजन किया, वह उन्हें कम पसंद आया। उसमें वैसा स्वाद और मजा नहीं आया। ब्राह्मण-दम्पती बार-बार चक्रवर्त्ती के भोजन का स्मरण करने लगे और अभिलाषा करने लगे कि कब पुनः चक्रवर्त्ती की भोजनशाला में जीमने की बारी आए।

भाइयो! चक्रवर्त्ती का शासन भरतक्षेत्र के छहों खंडों पर होता है। इतने विशाल साम्राज्य में उत्तम कुल की बस्तियों की कमी नहीं होती। परन्तु प्रत्येक घर में वैसा भोजन नहीं मिल सकता। अतएव ब्राह्मण अब पश्चात्ताप करता है कि मैंने मांग करने में भारी भूल कर दी। अगर मैंने प्रतिदिन चक्रवर्त्ती महाराज के रसोई घर में ही भोजन करने की मांग की होती तो

कितना आनन्द होता। महाराज इस मांग को अवश्य स्वीकार कर लेते। परन्तु अब क्या हो सकता है।

इस प्रकार ब्राह्मण हमेशा चक्रवर्त्ती सम्राट् की भोजन-शाला के भोजन को स्मरण करता और झूरता है, मगर अब वहां की बारी आना बहुत कठिन है।

भाइयो! ब्राह्मण को उसके जीवन में वह भोजन मिलना मुश्किल है, फिर भी कदाचित् वह सम्राट् की सेवा में पहुँच जाय और अनुनय-विनय करे तो सम्भव है उसे वह भोजन मिल जाय, किन्तु प्राप्त मानव-जीवन में यदि चूक गए और यथोचित करनी नहीं की तो पुनः मानव-जीवन की प्राप्ति दुर्लभ है। जो मनुष्य मानवभव पाकर मनुष्यता धारण करते हैं, उनको इह-परलोक में सुख की प्राप्ति होगी।

केन्टोनमेन्ट बैंगलोर
१७-१०-५१